MAPH-109 (N)

धर्म दर्शन

खण्ड–01 धर्म दर्शन

इकाई–1 धर्मदर्शन की परिभाषा एवं स्वरुप
इकाई–2 धर्म एवं नैतिकता

खण्ड–2 धार्मिक विश्ववास के आधार
इकाई–3 आस्था
इकाई–4 तर्क
इकाई–5 दैवी प्रकाशना
इकाई–6 रहस्यानुभूति

खण्ड–3 ईश्वर का स्वरूप
इकाई–7 निमित्तेश्वरवाद
इकाई–8 सर्वेश्वरवाद
इकाई–9 ईश्वरवाद

खण्ड–4 ईश्वर के अस्तित्व हेतु युक्तियाँ
इकाई–10 सत्ता मूलक युक्ति
इकाई–11 विश्वमूलक युक्ति,
इकाई–12 प्रयोजनमूलक युक्ति
इकाई–13 नैतिक युक्ति
इकाई–14 धार्मिक अनुभूति सम्बन्धी युक्ति

खण्ड–5 परम्परागत समस्या
इकाई–15 अशुभ की समस्या
इकाई–16 आत्मा की अमरता

खण्ड–6 नये आयाम
इकाई–17 धार्मिक भाषा
इकाई–18 धर्म निरपेक्षता
इकाई–19 ईश्वर विहीन धर्म

..................000................

खण्ड–01 धर्म दर्शन

इकाई–1 धर्मदर्शन की परिभाषा एवं स्वरुप

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 धर्म

1.3 धर्म शास्त्र

1.4 धर्म दर्शन

1.5 धर्मशास्त्र एवं धर्मदर्शन में तुलना

1.6 सारांश

1.7 बोध प्रश्न

1.8 उपयोगी पुस्तकें

--------------------000----------------

1.0 उद्देश्य

धर्म मानवीय जीवन से अत्यंत गहराई से जुड़ा हुआ है। हर व्यक्ति या यूं कहें कि समाज में रहने वाला हर व्यक्ति कहीं ना कहीं धर्म से संबंधित है । धर्म शब्द के अभिप्राय को समझे बिना भी कहीं न कहीं हम इसका प्रयोग करते रहते हैं और विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों परंपराओं क्रिया-कलापों इत्यादि का प्रयोग करते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि धर्म का स्वरूप क्या है? धर्म की प्रकृति क्या है ? धर्मशास्त्र क्या होता है ? धर्मशास्त्र अन्य शास्त्रों से कैसे अलग है? धर्म और धर्मशास्त्र में क्या संबंध होता है? और धर्म- दर्शन क्या है? धर्म-दर्शन धर्म और धर्मशास्त्र से किस प्रकार पृथक है या संबंधित है ? क्या धर्म एक मनोदशा या अभिवृत्ति है? या कोई पूजा पद्धति अथवा क्रियाकलाप है ? इत्यादि संप्रत्ययों को हम समझने का प्रयास करेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मानव का आदि काल से ही धर्म से अटूट सम्बन्ध रहा है। आज तक मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता को एक मौलिक स्वरूप प्रदान करने में सर्वाधिक प्रभावशाली भूमिका धर्म ने निभाई है। सामान्य अर्थ में धर्म मनुष्य मनुष्य की वह व्यापक अभिवृत्ति है जो उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है और किसी दैवीय या अति प्राकृतिक सत्ता में उसके विश्वास के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

वस्तुतः धर्म के व्यापक स्वरूप के सम्बन्ध में किसी एक परिभाषा के माध्यम से धर्म को स्पष्ट को स्पष्ट करना कठिन कार्य है। क्योंकि समय और क्षेत्र के अनुरूप धर्म की अलग-अलग परिभाषाएं प्रस्तुत की जाती रही है। जेम्स एच ल्यूबा ने अपनी पुस्तक ''A Psychological Study of Religion'' में धर्मों की 50 से अधिक परिभाषाओं को उल्लेख किया है। इसलिए धर्म की एक सार्वभौम परिभाषा के बजाए हम उसे मूल तत्वों के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं।

1.2 धर्म

यदि हम व्यापक रूप से धर्म के स्वरूप को व्याख्यायित करें तो कुछ सामान्य तत्व हमें प्रत्येक धर्म में परिलक्षित होते हैं। उन मूल तत्वों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि धर्म मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली वह व्यापक अभिवत्ति है जो सर्वाधिक मूल्यवान, पवित्र, सर्वत्र तथा शक्तिशाली समझे जाने वाले आदर्श और अलौकिक उपास्य विषय के प्रति अखण्ड आस्था एवं पूर्ण प्रतिबद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है जो मनुष्य के दैनिक आचरण, तथा प्रार्थना, पूजा, पाठ आदि वाह्य कर्मकाण्ड में अभिव्यक्त होती है।

समकालीन धर्म दार्शनिकों द्वारा भी धर्म को नए रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। उनके अनुसार किसी निष्ठा के विषय के प्रति सम्पूर्ण आत्म बन्धन के आधार पर जीवन की समस्याओं की ओर सर्वव्यापक रीति से जो व्यक्ति को उन्मुख करे उसे धर्म कहा जा सकता है। एरिक फ्राम एवं क्रेनिक ब्लैक स्टोन आदि धर्म दार्शनिक उपर्युक्त परिभाषा से सहमत हैं। इस परिभाषा में किसी अतीन्द्रिय, अतिप्राकृत या अलौकिक सत्ता का उल्लेख नहीं किया गया है। यहां निष्ठा का विषय सदैव कोई आदर्श व्यक्ति या सिद्धांत हो सकता है। यह परिभाषा मानवतावादी धर्मिं का प्रतिनिधित्व भी हो जाता है।

अन्ततः व्यापक अर्थ में कह सकते हैं कि धर्म वह सर्वव्यापक अभिवृत्ति है जो अलौकिक, आदर्शपूर्ण विषय के प्रति आस्था पर आधारित होती है एवं जिसके प्रति आत्मबन्धन एवं बचनबद्धता, उपासना तथा किसी पद्धति के द्वारा अभिव्यक्त एवं दृढ़ होती है।

जहां तक प्रश्न है शाब्दिक परिभाषा का हमें भारतीय एवं पाश्चात्य सन्दर्भ में अलग-अलग दृष्टिकोण मिलते हैं। भारतीय परम्परा में धर्म शब्द की उत्पत्ति 'धि' नामक धातु से हुई है जिसका तात्पर्य धारण करना है। महाभारत में कहा गया है कि 'जो लोक को धारण करे वह धर्म है। अर्थात् धर्म वह है जो सम्पूर्ण समाज को संगठित रखता है। महर्षि कणाद के अनुसार धर्म वह है जो मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति में सहायक है। इसके अतिरिक्त धर्म के लिए अंग्रेजी भाषा में त्मसपहपवद शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसकी उत्पत्ति लैटिन

भाषा के रिलिजेयर शब्द से हुई है। लैटिन में इसका अर्थ बांधना होता है। इस प्रकार रिलीजन वह है जो मनुष्य तथा ईश्वर में सम्बन्ध स्थापित करता है और मनुष्यों को परस्पर संगठित करता था बांधता है।

स्पष्ट है कि Religion शब्द का अर्थ संस्कृत के धर्म शब्द से अर्थ से भिन्न नहीं है। दोनों शब्दों का मूल अर्थ मनुष्यों को परस्पर बांधना या संगठित करना ही है। अर्थ मनुष्यों को परस्पर बांधना या संगठित करना ही है। इस दृष्टि से धर्म या रेलिजन सम्पूर्ण मानव समाज में एकता तथा संगठन स्थापित करने का साधन कहा जा सकता है।

धर्म के अभिप्राय को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए विभिन्न दार्शनिकों ने धर्म के विभिन्न पक्षों का उल्लेख किया है क्योंकि मनुष्य की व्यक्तिगत मनोदशा या अभिवृत्ति होने के साथ-साथ धर्म एक सामाजिक संस्था अथवा संगठन के रूप में भी प्राचीन काल से मानव जीवप को प्रभावित करता रहा है। पाश्चात्य चिंतक जैशिया रायस के अनुसार व्यावहारिक भावनात्मक एवं सैद्धान्तिक रूप से धर्म के तीन पक्ष सम्भव हैं। सामान्यतः धर्म हमें प्रेरणा देता है। हमें आगे बढ़ने का रास्ता दिखाता है, साथ ही हमारे भीतर आस्था उत्पन्न करके धर्म के अनुकूल आचरण करने की शिक्षा देता है। इसी परिप्रेक्ष्य में हम कह सकते हैं कि धर्म का सम्बन्ध उच्चादर्शों एवं नैतिक मूल्यों से है। विश्व में ऐसा कोई भी धर्म नहीं है जो नीतिविरोध आचरण की शिक्षा देता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सैद्धांतिक रूप से धर्म मूल्यों, आदर्शों एवं सिद्धांतों की स्थापना करता है एवं भावनात्मक रूप से मनुष्य में आस्था का संचार करता है। साथ ही यह क्रियात्मक या व्यावहारिक रूप से धर्मानुकूल आचार पद्धति को अपनाने की प्रेरणा देता है। धर्म मनुष्य के नैतिक आध्यात्मिक उन्नयन के लिए मार्गदर्शन भी करता है।

1.3 धर्म शास्त्र

धर्म के विषय में चिन्तन, चर्चा या विचार विमर्श को ईश्वर मीमांसा या धर्मशास्त्र कहा जाता है। दूसरे शब्दों में धार्मिक व्यक्ति जब अपने धर्म के गूढ़ विषयों पर चिन्तन और मनन करने लगता है तो उसे धर्मशास्त्री की संज्ञा दी जाती है। धर्म मीमांसा के शाब्दिक अर्थ पर विचार करें तो अंग्रेजी में इसका समानार्थक शब्द ज्ीमवसवहल है जिसकी उत्पत्ति ज्ीमवे शब्द से हुई है जिसका अर्थ ईश्वर होता है। इसलिए धर्मशास्त्र को ईश्वर विज्ञान या ईश्वरमीमांसा कहा जाता है। किन्तु कुछ धर्म ऐसे भी हैं जो ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते इसलिए धर्म विषयक चिन्तन को ईश्वर विज्ञान के स्थान पर धर्म मीमांसा कहना अधिक समीचीन है। इसलिए धर्मशास्त्र को व्याख्यायित करते हुए कहा जा सकता है कि धर्मशास्त्र वह विधा है जो किसी विशेष धर्म के मूल सिद्धांतों, मान्यताओं, पूजा पद्धतियों और विश्वासों को व्यवस्थित और सुसंगत व्याख्या करने का प्रयास करती है। यह परिभाषा ईश्वरवादी एवं अनीश्वरवादी दोनों ही धर्मों का प्रतिनिधित्व करती है। धर्मशास्त्र में किसी विशेष धर्म से संबंधित धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या एवं विवेचना रहती है।

वस्तुतः देखा जाय तो धर्मशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य किसी धर्म के बारे में व्याप्त मिथ्या धारणा एवं भ्रम का निराकरण करना होता है। साथ ही यह दिखाना भी होता है कि उस धर्म के मूल सिद्धांतों एवं विश्वासों में कोई तार्किक असंगति नहीं है चूंकि धर्मशास्त्र का प्रमुख आधार आस्था होती है इसलिए धर्मशास्त्र में धार्मिक

सिद्धांतों के प्रति संदेह नहीं किया जाता है बल्कि विभिन्न धार्मिक मान्यताओं के पारस्परिक सुसंगत सम्बन्ध को प्रदर्शित करने का प्रयास होता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि धर्म शास्त्र का कार्य धार्मिक सिद्धांतों की परीक्षा या मूल्यांकन करना नहीं है बल्कि किसी विशेष धर्म के विषय में विचार विमर्श और उसके विरुद्ध उठायी जाने वाली आपत्तियों का निराकरण करना है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में धर्मशास्त्री उस धर्म के प्रमुख धार्मिक ग्रन्थों को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित मानकर चर्चा करते हैं।

1.4 धर्म दर्शन

धर्म का दार्शनिक पद्धति से विवेचन की ही धर्म दर्शन कहलाता ह। धर्म दर्शन को परिभाषित करते हुए प्रो0 ब्राइट मैन ने कहा है कि धर्म-दर्शन धर्म की बौद्धिक व्याख्या करते का प्रयास है। यह धर्म का सम्बन्ध अन्य अनुभूतियों से बताकर धार्मिक मनोवृत्तियों एवं आधारों का मूल्य स्पष्ट करता है। प्रो0 राइट के शब्दों में धर्म दर्शन धर्म की सत्यता तथा धर्म के व्यवहारों तथा विश्वासों की मूल विशेषताओं का सम्पूर्ण दृष्टि से विवेचन करता है। प्रो0 एडवर्ड के अनुसार धर्म दर्शन धार्मिक अनुभूतियों के स्वरूप, व्यापार, मूल्य तथा सत्यता की दार्शनिक खोज है। स्पष्ट है कि धर्म दर्शन सुव्यवस्थित रूप से धर्म से सम्बन्धित समस्याओं, मान्यताओं, सिद्धांतों एवं विश्वासों का तर्कसंगत अध्ययन कर मूल्यांकन करता है।

मानव का आदिकाल से ही धर्म से अटूट सम्बन्ध रहा है। चूंकि धर्म का सम्बन्ध दर्शन से अत्यधिक निकट है इसलिए दर्शन में धर्म के तात्विक,नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष का अध्ययन किया गया है। देखा जाय तो धर्म एवं दर्शन एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। धर्म का उद्भव श्रद्धायुक्त भय और आश्चर्य से हुआ है जबकि दर्शन की उत्पत्ति भी आश्चर्य के मानी गयी है।

उपर्युक्त समानता के बावजूद अन्तर यह है कि धर्म आश्चर्य की व्याख्या करने के बजाय श्रद्धा पर आधारित पूजा-पाठ इत्यादि क्रियायें करता है जबकि दर्शन आश्चर्य की बौद्धिक व्याख्या निष्पक्ष रूप से करता है इसलिए हम कह सकते है कि धार्मिक, भावना धार्मिक क्रिया एवं धार्मिक चेतना में निहित तत्वों की मीमांसा ही धर्म दर्शन है। अतः धर्मदर्शन धर्म के अध्ययन की एक विधि है जिसमें धर्म का दार्शनिक दृष्टि से तार्किक एवं बौद्धिक विवेचन किया जाता है।

धर्म दर्शन उन सभी अन्धविश्वासों की आलोचना करता है जिसके कारण धर्म के विभिन्न पक्षों में अतार्किकता एवं विसंगतियां आती हैं। धर्म दार्शनिक धर्म की सत्यता तथा धर्म के व्यवहारों एवं विश्वासों के मूल मान्यताओं पर सम्पूर्ण विश्व की दृष्टि से विचार करते हैं एवं धर्म का सम्बन्ध मूल तत्व से सुनिश्चित करते हैं।

धर्म दर्शन केवल धार्मिक सिद्धांतों का विश्लेषण नहीं करता बल्कि धार्मिक अनुभूतियों के सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिक सामाजिक एवं ऐतिहासिक पद्धतियों का भी तुलनात्मक अध्ययन करता है। अन्ततः कह सकते हैं कि स्वतंत्र रूप से तर्क बुद्धि को एकमात्र ज्ञान की कसौटी मानकर धर्म की विवेचना करना ही धर्म दर्शन है।

जहां तक प्रश्न है धर्म दर्शन के स्वरूप का तो इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि धर्मदर्शन उन सभी विषयों का विवेचन करता है जिनका मनुष्य के धार्मिक जीवन से सम्बन्ध है तथा जिनपर तर्क संगत रूप से विचार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ - धर्म का स्वरूप, मूल्य, धर्म का विकास, धर्म से सम्बन्धित तथा जिनपर तर्क संगत रूप से विचार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ- धर्म का स्वरूप, मूल्य, धर्म का विकास, धर्म से सम्बन्धित अनुभूतियां, कर्मकाण्ड, मान्यताएं, विश्वास, संस्थाएं आदि धर्म दर्शन के क्षेत्र में आते हैं। इस प्रकार धार्मिक जीवन से सम्बन्धित सभी पक्ष पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से धर्म दर्शन की विषय वस्तु है।

1.5 धर्मशास्त्र एवं धर्मदर्शन में तुलना

धर्म दर्शन एवं धर्मशास्त्र मे महत्वपूर्ण अन्तर विषय वस्तु एवं दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। धर्म शास्त्र का क्षेत्र एवं विषयवस्तु अत्यन्त सीमित है और इसका दृष्टिकोण संकुचित होता है क्योंकि धर्मशास्त्र सदैव किसी धर्म विशेष का ही शास्त्रीय अध्ययन करता है। उदाहरण स्वरूप हम बौद्ध धर्म शास्त्र एवं इस्लाम धर्मशास्त्र को ले सकते हैं। इसके विपरीत धर्म दर्शन किसी विशिष्ट धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक परम्परा पर आधारित नहीं है। यह किसी धर्म विशेष की अपेक्षा धर्म के सामान्य अर्थ, उत्पत्ति, विकास एवं मूल्य का निश्चय करने की चेष्टा करता है।

धर्म दर्शन का प्रमुख कार्य धर्म के वास्तविक स्वरूप का पता लगाना है। यह धर्म से सम्बन्धित मानवीय अनुभूतियों के सभी पक्षों का अध्ययन करता है किन्तु धर्मशास्त्र अपने विशेष धर्म से सम्बन्धित सिद्धांतों एंव अनुभूतियों का भी वर्णन करता है अथवा व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करता है इसलिए धर्मशास्त्र की अपेक्षा धर्म दर्शन का क्षेत्र व्यापक हो जाता है। दोनों ही धर्म से संबंधित सामान्यांे पर विचार करते हैं तथापि इनके अध्ययन की विधि एवं लक्ष्य में अत्यधिक असमानता है।

विधि एवं लक्ष्य पर आधारित असमानता में प्रमुख आधार स्रोत है। धर्मशास्त्र में श्रुति, परम्परा, श्रद्धा, पूजा आदि धार्मिक ज्ञान के उच्चतम स्रोत माने जाते हैं। जबकि धर्म दर्शन में तर्क की कसौटी पर परीक्षण किए बिना किसी भी मान्यता को स्वीकार नहीं किया जाता। तर्क के अतिरिक्त किसी अन्य मान्यता को धर्म दर्शन में स्थान नहीं दिया जाता। धर्मशास्त्र के अनुसार बुद्धि ज्ञान प्राप्ति का साधन मात्र है साध्य नहीं। श्रुति एवं दैवी प्रकाशना द्वारा प्राप्त धार्मिक सत्य का विवेचन एवं प्रतिपादन बुद्धि का मुख्य कार्य है किन्तु धर्म दर्शन में बुद्धि सर्वोपरि है। इसमें भावना आदि से नियंत्रित व सीमित न होकर बुद्धि पूर्णतया स्वतंत्र होती है। धार्मिक मान्यताओं का बौद्धिक विवेचन ही धर्म दर्शन का प्रधान कार्य है।

धर्मशास्त्री का दृष्टिकोण व्यवहारवादी एवं प्रयोजन वादी होता है। वह जिन धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है। वे उसके धार्मिक लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होते हैं। मानव मूल्यांे के प्रति भी उसका दृष्टिकोण मूलतः प्रयोजनवादी ही होता है। किन्तु धर्म दार्शनिक न तो किसी धर्म या परम्परा विशेष के अनुयायियों के लाभ के लिए दार्शनिक विवेचन करता है और न वह किसी पारमार्थिक मूल्य इत्यादि के प्रति श्रद्धा ही रखता है वह धार्मिक सत्य व मूल्य का बौद्धिक विवेचन करने में पूर्ण स्वतंत्र। धर्मशास्त्री ऐसा उपदेशक है जो कि अपनी धार्मिक मान्यताओं का तार्किक प्रतिपादन करता है, किन्तु धर्मदार्शनिक वह जिज्ञासु है जो बौद्धिक विवेचन द्वारा धार्मिक सत्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। धर्मशास्त्र में केवल एक धर्म का उपदेश या

अध्ययन होता है जबकि धर्मदर्शन में जिज्ञासु सभी धर्मों के सामान्य तथ्य की खोज करता है। धर्म दर्शन धर्मशास्त्र और दर्शन के बीच स्थित है वह दार्शनिक दृष्टि से धर्म की आलोचना करता है दूसरी ओर धर्मशास्त्रों से धर्म की सामग्री प्राप्त करता है जबकि धर्मशास्त्रों से धर्मशास्त्र अपनी सामग्री विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत ही प्राप्त करता है। उस विशिष्ट धर्म से परे जाना धर्मशास्त्र की सीमा में नहीं है।

उपर्युक्त विभिन्नताओं के बावजूद धर्मशास्त्र एवं धर्म दर्शन एक दूसरे के पूरक भी हैं। धर्म दर्शन धर्म का बौद्धिक विवेचन करता है और धर्मशास्त्र धार्मिक मूल्यांे के प्रति विश्वास व्यक्त करता है। मूल्य की दृष्टि से यदि धर्मशास्त्र विश्वास को प्रमुख आधार मानता है तो इससे किसी प्रकार की भी हानि नहीं होती। धर्म दर्शन धर्म की कितनी भी बौद्धिक विवेचना करे किन्तु उसे मूल्यों में विश्वास करना अनिवार्य होता है। इनके मत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्बन्ध आध्यात्मिकता का होता है। धर्म दार्शनिक आध्यामिकता को तर्क की कसौटी पर जीवन में स्थान देने का आग्रह करता है जबकि धर्मशास्त्र का आधार ही आध्यात्मिकता है।

1.6 सारांश

हम देखते हैं कि धर्मशास्त्र और धर्म- दर्शन में अनेक विभिन्नताएं हैं परंतु दोनों विरोधी नहीं कहा जा सकते दोनों धर्म से संबंधित है । तथापि दोनों के अलग-अलग उद्देश्य हैं। धर्मशास्त्र व धर्म दर्शन इन दोनों का ही संबंध बुद्धि व विश्वास से है परंतु धर्म दर्शन बुद्धि की ओर अधिक झुकाव रखता है जबकि धर्म दर्शन आस्था व विश्वास पर।

1.7 बोध प्रश्न

1. धर्म एवं धर्म दर्शन में क्या अंतर है?

2. धर्मशास्त्र एवं धर्म दर्शन में क्या अंतर है?

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1. समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।

2. धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।

3. धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

इकाई–2 धर्म एवं नैतिकता

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 धर्म एवं नैतिकता में सम्बन्ध

2.3 क्या धर्म नैतिकता का अभिन्न अंग है

2.4 समीक्षा

2.5 क्या धर्म और नैतिकता एक दूसरे के पूरक है?

2.6 समीक्षा-

2.7 सारांश

2.8 बोध प्रश्न

2.17 उपयोगी पुस्तकें

---------------------000--------------

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई में नैतिकता के अर्थ तथा उसके स्वरूप की विस्तृत विवेचना की गयी है। साथ ही इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि धर्म एवं नैतिकता के सम्बन्ध पर भी विचार किया गया यद्यपि विभिन्न दार्शनिकों ने पूर्णत भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण कोणों से धर्म तथा नैतिकता के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या की है, यद्यपि उसकी आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया गया है।

2.1 प्रस्तावना

मानव के सामाजिक जीवन को संचालित करने में धर्म तथा नैतिकता की भूमिका महत्वपूर्ण रही है विश्व में जो भी सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्थान दिखायी देता है, वह विकास धर्म तथा नैतिकता के बिना संभव नहीं है। यहाँ धर्म शब्द का प्रयोग सामान्य प्रालित अर्थ में ही है, अर्थात् धर्मशब्द का प्रयोग कर्तव्य या स्वकर्तव्यत्त न होकर मनुष्य की वह व्यपक अभिवृत्ति है, जो उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है। यह किसी दैवीय या अप्राकृतिक सत्ता से उसके विश्वास के फलस्वारूप उत्पन्न होती है।

वस्तुतः धर्म मनुष्य के जीवन के बौद्धिक संवेगात्मक एवं क्रियात्मक तीनों पक्षों को प्रभावित करता है। जहाँ तक प्रश्न है. नैतिकता की वह रीति-रिवाजों, मूल्यों एवं आदर्शों से सम्बन्धित वह सामाजिक व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य मनुष्य के

वैयक्तिक कल्याण एवं सामाजिक हित है समायोजन हेतु मनुष्य के आचरण के नियमन, नियन्त्रण, मूल्यों की स्थापना एवं मार्गदर्शन करना है। नैतिकता को मनुष्य सामाजिक दबाव अथवा स्वयं अपनी इच्छा के कारण स्वीकार करता है। सामान्यतया व्यावहारिक जीवन में नैतिहता के इसी स्वरूप को स्वीकार किया जाता है।

स्पष्ट है कि सामाजिक संख्या के रूप में नैतिकता मनुष्य के आचरण को नियमित करने के लिए कुछ नैतिक नियमों एवं मूल्यों को प्रस्तुत करती है, इस अर्थ मे अनुभूति का संवेदनात्मक पक्ष तथा मानवीय आचरण को नियमित करने वाला तत्व धर्म में भी होता है। इसलिए धर्म तथा नैतिकता का सम्बन्ध घनिष्ठ है तथा नैतिकता और धर्म किसी न किसी रूप में मनुष्य के संवेदनात्मक या भावनात्मक पक्ष से जुड़े होने के साथ ही सामाजिक जीवन से भी सम्बन्धित है उपर्युक्त विवेचन पर समस्या उत्पन्न होती है कि यदि धर्म तथा नैतिकता दोनों का सम्बन्ध अटूट रूप से समाज में रहा है तो इस सम्बन्ध की व्याख्या किस प्रकार होता है? भारतीय चिंतन में इसके अन्तर्गत विस्तृत एवं व्यवस्थित व्याख्या उपलब्ध नहीं होती क्योंकि अधिकतर भारतीयों ने धर्म एवं नैतिकता में मूलभूत अन्तर स्वीकार नहीं किया है। यद्यपि पाश्चात्य दार्शनिक चिंतन में इसकी विशद् चर्चा मिलती है।

2.2 धर्म एवं नैतिकता में सम्बन्ध

धर्म एवं नैतिकता के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना मुख्य रूप से पाश्चात्य विचारकों ने की है क्योंकि जहाँ तक भारतीय चिंतकों का प्रश्न है, वे अधिकांशतया धर्म एवं नैतिकता में भेद नहीं करते। मनु ने धर्म के जिन दस लक्षणों का उल्लेख किया है। उससे यह तथ्य स्पष्ट होता है। वस्तुता यदि धर्म को' स्वकर्तव्य पालन के अर्थ में लिया जाय तो मनु का मत उचित ही लगता है। पाश्चात्य विचारधारा में जिन विधारकों ने इस सन्दर्भ में अपना मत प्रस्तुत किया है वे अधिकतर ऐसे विचारक है जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते है। उन्होंने धर्म का अर्थ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक शाश्वत, दयालु तथा न्यायशील ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास के अर्थ में लिया है। ये विचारक व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते है तथा नैतिकता को पूर्णतया धर्म पर आधारित मानते है।

उनके अनुसार धर्म के अभाव में नैतिकता संभव नहीं है धर्म के कारण ही हम समस्त नैतिक मूल्यों, आदर्शों तथा नियमों को स्वीकार करते हैं। जो व्यक्ति धर्म में आस्था नहीं रखता उसके लिए उन नैतिक मूल्यों, आदर्शों तथा नियमों का कोई महत्व नहीं हो सकता। उन दार्शनिकों के मतों का निहितार्थ यह है कि धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति के जीवन में नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। धर्म को ही नैतिकता का दिशा निर्देशक माना जाता है। कुछ पश्चिमी विचारक नैतिक नियमों को ईश्वरीय आदेश मानते है, जिनका उल्लंघन संभव ही नही है। इसी मत के समर्थन में जे०ई० स्मिथ ने लिखा है कि ईसाई धर्म तथा यहूदी धर्म में इस बात को स्वीकार करने में मतैक्य है कि धर्म के बिना नैतिकता अन्तता अनैतिकता है।... अन्तता अच्छे जीवन के विषय में कोई भी विचार, मनुष्य को क्या करना चाहिए इस संबंध में कोई भी महत्वपूर्ण सिद्धान्त, मानव के अन्तिम लक्ष्य से सम्बंधित किसी विचार के बिना संभव नहीं है तथा यह विचार नैतिकता में धार्मिक तत्व का समावेश करता है। यह इस बात के सिद्ध करने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रमाण है कि नैतिकता धर्म के साथ अनिवार्यताः सम्बन्ध है।

ऐसी नैतिकता जो अपने से ऊपर किसी सत्ता पर आधारित नहीं है अनिवार्यताः भ्रष्टाचार में लिप्त होती जाती है क्योंकि वह अपने उपदेशों से परे किसी निर्णायक को स्वीकार नहीं करती। परन्तु जो नैतिकता धार्मिक स्वरूप वाले ईश्वरीय प्रेम पर वास्तव में आधारित है तथा जो ईश्वर की शक्ति को निर्णायक रूप में स्वीकार करती है, वह सिद्धान्तता ऐसे भ्रष्टाचार से बची रहती है। धर्म पर आधारित न रहने वाली नैतिकता के पास आत्मालोचन का कोई सिद्धान्त नहीं होता क्योंकि इसके मूल में कोई विश्वातीत अर्थात- ईश्वरवरीय अथवा आध्यात्मिक सन्दर्भ में नहीं होता जिसके द्वारा वह

शासित हो सके और जो इसके विषय में निर्णय दे सके। यह एक सच्चाई है कि नैतिकता की विषयवस्तु को निर्धारित करने के अतिरिक्त धर्म इसका अन्तिम निर्णायक भी है धर्म नैतिक जीवन के लिए प्रेरणा देता है तथा इसके साथ ही इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण वस्तु प्रदान करता है वह है नैतिक प्रयास की सार्थकता एवं उसका उद्देश्य, धार्मिक आस्था के साथ सजीव सम्बन्ध के अभाव में नैतिकता अनिश्चित एवं अपूर्त ही बनी रहती है। जब यह धर्म पर आधारित नही होती, तो उसके नष्ट होने का भय निरंतर बना रहता है। स्मिथ के अतिरिक्त कार्ल वार्थ, ऐमिल ब्रुनर, रीनोल्ड नेबुर आदि दार्शनिक नैतिकता को धर्म पर आधारित मानते हैं।

वास्तव में देखा जाय तो उपरोक्त धारणा उचित नहीं है क्योंकि सामान्य अर्थ में धर्म को स्वीकार किये बिना थी मनुष्य नैतिकता के अनुरूप आचरण कर सकता है। नैतिक आचरण के लिए धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति किसी धर्म में आस्था नही रखता वह नैतिक हो सकता है क्योंकि उसका आचरण नैतिकता के प्रतिमानों के विपरीत है। एक धर्मनिरपेक्ष व्याक्ति या अधार्मिक व्यक्ति या अनीश्वरवादी पूर्णतया नैतिक व्यक्ति हो सकता है, पुनः धर्म को नैतिकता का आधार मानने से यह भी कठिनाई उत्पन्न होती है कि प्रायः धर्म में जिस आध्यात्मिक या अतीन्द्रिय या अलौकिक परमसत्ता या सर्वोच्च मूल्य को स्वीकार किया जाता है, उनको प्रमाणो द्वारा सिद्ध करने का प्रयास विवाद का विषय रहा है इस प्रकार यदि धर्म को नैतिकता का आधार माना जाय तो धर्म की विसंगतियां या कमियां नैतिकता को भी प्रभावित करती है

2.3 क्या धर्म नैतिकता का अभिन्न अंग है

धर्म तथा नैतिकता के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में उपरोक्त ईश्वरवादी मत के विरुद्ध लगायी गयी आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए कुछ दार्शनिक ने नौनिकता को धर्म पर आधारित न मानकर स्वयं धर्म को ही नैतिकता का अभिन्न अंग मान लिया है। इन दार्शनिकों में मैथ्यू आनील्ड का नाम उल्लेखनीय है। धर्म संवेगों से सम्बन्धित नैतिकता है। इसी क्रम में हम ब्रेथवेट का नाम उद्धृत कर सकते है जिनके अनुसार धार्मिक कथन वास्तव में नैतिक कथनों से मूढहलत: भिन्न नहीं है क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक ही है तथा वह है आचरण नीति तथा जीवन पद्धति के विषय में वक्ता की प्रतिबद्धता को अभिव्यक्त करना। इस प्रकार उनके अनुसार धर्म वस्तुता नैतिकता से तथा स्वतंत्र होकर उसी का एक अपरिहार्य भाग मात्र है नैतिक मूल्यों आदर्शों अथवा नियमों के अभाव में धर्म की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

2.4 समीक्षा -

उपरोक्त ब्रेथवेट का मत पूर्णतया सत्य न होकर आंशिक रुप से ही सत्य है। नैतिकता धर्म का निश्चित रूप से अनिवार्य अंग है तथा उसके अभाव में मानव जीवन के लिए धर्म का महत्व बहुत कम हो जाता है, किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि नौतिकता से भिन्न धर्म का कोई अस्तित्व ही नहीं है। धर्म को नैतिकता का भाग नहीं माना जा सकता। धर्म में किसी आध्यात्मिक अतिप्राकृतिक या अलौकिक सत्ता में निश्चित रूप से आस्था रखी जार्ता है जबकि इसका नैतिकता से कोई संबंध ही नहीं है। धर्म तथा नैतिकता एक दूसरे से निश्चित रूप से भिन्न है

एच डी. लेविस के मत का समर्थन करते हुए हम कह सकते है कि वस्तुता नैतिकता धर्म के लिए तथा धर्म नैतिकता के लिए समान रूप से अनिवार्य है- इन दोनों में कोई-कोई अंतर्विरोध नहीं है दोनों एक दूसरे से अनिवार्यतः सम्बद्ध है। लेविस का कथन है - यह माना जा सकता है कि धर्म तथा नैतिकता का एक दूसरे के लिए बहुत महत्व है। मैं इसी विचार का समर्थन करता हूं- भूतकाल में मनुष्यों के जीवन में धर्म किसी न किसी रूप में प्रमुख तत्व रहा है। और यदि इसके दावे में कोई सार है तो हमे यह आशा करनी चाहिए कि यह हमारे आचरण पर बहुत अधिक तथा दूरगामी प्रभाव डालता रहेगा। - इसी मत का समर्थन करने वाले विचारक नैतिकता एवं धर्म को एक दूसरे का पूरक मानते है। धर्म तथा

नैतिकता के निकटतम सम्बन्ध को स्वीकार करने वाले दार्शनिक यह मानते है कि नीति शास्त्र के मान्य सिद्धान्त धर्म के भी मान्य सिद्धांत है। नीति शास्त्र में ईश्वर की सत्ता, इच्छा की स्वतन्त्रता तथा आत्मा की अमरता को मुख्य पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार किया गया है तथा धर्म भी इन मान्यताओं को महत्वपूर्ण मानता है । दोनों ही सर्वोच्च मूल्य की धारणा में विश्वास करते है.

2.5 क्या धर्म और नैतिकता एक दूसरे के पूरक है?

उपर्युक्त विवेचनों के अतिरिक्त भी कुछ विचारकों ने धर्म तथा नैतिकता सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये। कुछ चिंतक धर्म तथा नैतिकता को एक दूसरे पर आधारित मानने के बजाये पृथक पृथक मानते हुए एक-दूसरे के पूरक के रूप में स्वीकार करते है।–

धर्म तथा नैतिकता एक दूसरे की सहायता करते है अतः एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है। तात्पर्य है कि धर्म में निहित कमियों को, नैतिकता दूर करके उसे पूर्णतः प्रदान करती है जबकि नैतिकता को सहज बनाने में अथवा आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने हेतु धर्म पूरक का कार्य करता है।

तात्पर्य है कि धर्म तथा नैतिकता एक दूसरे पर आश्रित मात्र नहीं है बल्कि नैतिकता धर्म को परिमार्जित करती है तथा इसाई धर्म के दस कमाण्डे मेंट तथा भारतीय चिंतन के पंचमात्र व्रत नैतिक नियमों के उदाहरण है। इस सन्दर्भ में एटकिसन ली' कहते है कि नैतिकता धर्म की महान शोधक रही है इसने धर्म की समीक्षा करके उसे नैतिक बनाया है। उदाहरणार्थ ऋग्वैदिक काल में प्रचलित पशुबलि प्रथा में कमी आना।

धर्म तथा नैतिकता को एक दूसरे का पूरक मानने का समर्थन में महात्मा गांधी भी करते है, उनके अनुसार (यंग इंडिया) यह संभव ही नहीं है कि कोई क्रूर असत्यवादी तथा हिंसक प्रवृत्ति का हो तथा वह यह सोचे कि ईश्वर की कृपा उस पर होती है। गांधी जी सत्य का अनुशीलन तथा ईश्वर की प्राप्ति को समानर्थक मानते है। उनके अनुसार धर्म सत्य का निष्ठापूर्वक अनुशीलन है। ईश्वर ही सत्य है सत्य ही ईश्वर है। जिस प्रकार बीज जल से सिंचित होकर अंकुरित तथा पौधे के रूप में बढ़ता है उसी प्रकार नैतिकता भी धर्म से सिचिंत होकर फलती-फूलती है।

2.6 समीक्षा-

धर्म तथा नैतिकता के सम्बन्ध में यह मत पूर्णतः मुक्तिसंगत नहीं है। बिना धर्म के भी नैतिकता का पलायन किया जा सकता है। मानव आचरण का मूल्यांकन नियमन एवं मार्गदर्शन, धर्म के अभाव में भी संभव है। धर्म परायण व्यक्ति धार्मिक क्रियाकलापों के पालन में नैतिकता का उल्लंघन करता है जबकि कभी कभी नैतिकता के पालन में धार्मिक सिद्धातों की अवहेलना करनी पड़ती है। कुछ समीक्षक यहाँ तक कहते है कि यह एक दूसरे के पूरक होने के बजाय एक दूसरे के लिए हानिकारक है।

उपर्युक्त विकल्पों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि धर्म तथा नैतिकता न तो एक दूसरे पर आधारित है तथा न ही एक दूसरे के पूरक है। चिंतकों का यह भी मत है कि धर्म नैतिकता के लिए सहायक न होकर उसके लिए हानिकारक तथा बाधक है, क्योंकि यह परलोक तथा पलायनवाद' को प्रश्रय देता है जबकि नैतिकता का मूल दृष्टिकोण इलौकिक है । समाज के सदस्य के रूप में नैतिकता मूल कर्तव्यों को स्वेच्छा से पालन करने के लिए प्रोत्साहित करती है, जिससे व्यक्ति तथा समाज दोनों का कल्याण होता है। इस प्रकार यह विकल्प धर्म निरपेक्षता का समर्थन करता है जिसकी मान्यता है कि नैतिकता धर्म से स्वायत्त । स्वतन्त्र भी है तथा पृथक भी। नैतिक व्यवस्था तथा नैतिक नियमों का मूल स्रोत मानव समाज ही है कोई अलौकिक सत्ता नहीं। इसी सन्दर्भ में होलियोक एवं ब्रेडलाक द्वारा स्थापित

धर्मनिरपेक्षतावादी सिद्धान्त ऐश्वर्य-विहीन नीतिकर्ता अथवा धर्म विहीन नैतिकता को स्वीकार करता है। ईसी सन्दर्भ में नीत्से ने कहा है कि- ईश्वर चुका है तथा सात्र मानते है कि ईश्वर का मर जाना ही बेहतर है। उनके अनुसार यदि ईश्वर नहीं है तो हमारे व्यवहार को वैध ठहराने के लिए कोई मूल्य या आदेश उपलब्ध नहीं होगा तथा मनुष्य स्वतन्त्र निर्णय लेते हुए उत्तरदायित्व वहन करेगा। फ्रायड के अनुसार यदि धर्म तथा नैतिकता को अलग नही किया गया तो धर्म के कम प्रचलित होने पर नैतिकता के समाप्त होने का संकट उत्पन्न होगा।

इस मत का समर्थन भारतीय परिप्रेक्षा में मानवेन्द्र नाथ राय व नेहरू जैसे मानवतावादी चिंतक करते है। मानवेन्द्र नाथ मानते है कि वैज्ञानिकता का विकास के साथ ही धर्म आधारित व्याख्याएं मानवीय जिज्ञासाओं के सन्दर्भ में अर्थहीन हो जायेगी, इसलिए नैतिकता का माप दण्ड धर्म को नहीं बनाया जा सकता तथा इस प्रकार की नैतिकता वाह्य आरोपित एवं धार्मिक कट्टरता को बढ़ासवा देती है। नेहरू के अनुसार धर्म ग्रन्थ ईश्वर को आधार मानकर वैज्ञानिक खोज में अड़चन डालते है एवं समाज सुधार में भी बाधा उत्पन्न करते है। इसलिए सामाजिक कल्याण हेतु धर्म-निरपेक्ष नैतिकता ठीक है।

उपरोक्त मत के पक्ष में आंशिक सत्यता अवश्य विद्यमान है किन्तु धर्म ने मनुष्य के स्वभाव में मानवीय सद्गुणों को उत्पन्न करने का अमूल्य प्रयास किया है। इस दृष्टि से धर्म ने नैतिकता को सहायता भी की है। समीक्षकों के अनुसार धर्म निरपेक्षता नैतिकता इस समस्या का समाधान नहीं कर पाती है कि व्यक्ति सदैव नैतिक क्यों रहता है? धार्मिक नैतिकता में व्यक्ति के दैवीय-क्रियाकलाप एक अन्तिम लक्ष्य से सम्बन्धित हो जाते है, जिसके सापेक्ष व्यक्ति अपने कर्मों का मूल्यांकन भी करता है। इसलिए काण्ट नैतिकता की पूर्व मान्यता के रूप में ईश्वर के अस्तित्व तथा आत्मा की अमरता को स्वीकार करते है जिसका सम्बन्ध मूलतः धर्म से है।

2.7 सारांश

धर्म तथा नैतिकता के विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों में कुछ मूलभूत अन्तर अवश्य विद्यमान है कि दोनों में कुछ मूलभूत अन्तर अवश्य विद्यमान है, जिसका कारण धर्म एवं नैतिकता की मूल संकल्पना में अन्तर होना है। धर्म का केन्द्र अलौकिक सत्ता के प्रति आस्था है, जबकि नैतिकता का केन्द्र मनुष्य है। अतः निष्कर्ष के रूप में यह कह सकते है कि सामान्य अर्थ में प्रचलित धर्म नैतिकता के लिए न तो अनिवार्य है न ही उसका आधार है फिर भी नैतिकता के बिना धर्म का अस्तित्व तो संभव है किन्तु नैतिकता से रहित धर्म, मानव जीवन में सक्रिय भूमिका नहीं निभा सकता है।

2.8 बोध प्रश्न

1 क्या धर्म के बिना नैतिकता संभव है ?विवेचना कीजिए।

2 क्या नैतिकता के बिना धर्म संभव है परीक्षण कीजिए।

2.9 उपयोगी पुस्तकें

1 समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।

2 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।

3 धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

------------------00-----------

खण्ड–2 धार्मिक विश्वास के आधार
इकाई 3- आस्था

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अर्थ एवं परिभाषा

3.3 अस्था एवं विश्वास

3.4 आस्था एवं ज्ञान faith and knowledge

3.5 आस्था की विशेषताएं

3.6 प्रमाण

3.7 समीक्षा

3.8 सारांश

3.9 बोध- प्रश्न

3.10 उपयोगी पुस्तकें

---------------000--------

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई धार्मिक विश्वास के एक आधार के रूप में आस्था की विस्तृत चर्चा की गई है इकाई में आस्था एवं विश्वास आस्था एवं ज्ञान के मध्य विभेद को भी स्पष्ट किया गया। इसके अतिरिक्त धार्मिक विश्वास के आधार के रूप में आस्था कितनी सफल प्रतीत हुई है का भी आलोचनात्मक विवरण दिया गया है

3.1 प्रस्तावना

धर्म संबंधी विश्वास को धार्मिक विश्वास के रूप में अभिहित किया जाता है। धार्मिक विश्वास के अंतर्गत ईश्वर की सत्ता में विश्वास आत्मा की अमरता में विश्वास मृत्यु प्रांत जीवन में विश्वास पुनर्जन्म में विश्वास मोक्ष की धारणा में विश्वास आदि सम्मिलित हैं ब्लैक स्टोन ने धार्मिक विश्वास की परिभाषा निम्न प्रकार से की है। ,किसी निष्ठा के विषय के प्रति संपूर्ण प्रतिबद्धता की धार्मिक विश्वास है। धर्म दार्शनिकों ने धार्मिक विश्वास के चार आधारों का उल्लेख किया है,आस्था, देवीउपासना ,तर्क बुद्धि तथा रहस्यानुभूति।

3.2 अर्थ एवं परिभाषा

आस्था को पराया धार्मिक विश्वास का आधारभूत स्तंभ माना जाता है। प्रायः इसका प्रयोग विश्वास ,श्रद्धा, निष्ठा आदि अर्थों में होता है। प्रोफेसर बाइटमैन ने आस्था को तीन अर्थों में प्रयुक्त किया है।

1 आस्था श्रुति की स्वीकृत के रूप में प्रस्तुत होती है।

2 आस्था को ईश्वरीय दिन के रूप में भी अभिहित किया जाता है।

3 आस्था को विश्वास के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है आस्था को विश्वास या आसाकारिता के अर्थ में ग्रहण किया जाता है।

आस्था व्यक्तित्व के सक्रिय पक्ष का द्योतक है। आस्था वह प्रक्रिया है जिसमें हमें आध्यात्मिक तत्व के साक्षात्कार होता है। साधु संतों में भी प्राय यही नियम देखा जाता है। एक्विनास के अनुसार ईश्वर द्वारा प्रकाशित सत्यो की विश्वासपूर्ण स्वीकृति ही आस्था है। यह स्वीकृत एक ऐसी वैकल्पिक प्रक्रिया है जो भविष्यवाणी तथा चमत्कार जैसे वहां बाहन प्रमाणों एवं संकेतो द्वारा प्रेरित होती है। आस्था के वैकल्पिक पक्ष पर विशेष महत्व देते हुए विलियम जेम्स इससे धार्मिक ज्ञान में केंद्रीय स्थान देते हैं। आस्था केवल व्यावहारिक किया सैद्धांति नहीं होती है।

यद्यपि इसमें सैद्धांतिक सत्यता निहित है तथापि यह सत्यता बौद्धिक तर्क की अपेक्षा व्यवहारिकता पर आधारित है आस्था का तथ्यों से उतना ही संबंध है जितना तथ्यों का मूल्य से होता है विकसित आस्था में आस्था स्थाई बौद्धिक दृष्टिकोण तथा व्यक्तित्व को पूर्ण प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है।

3.3 आस्था एवं विश्वास

समान्यता आस्था एवं विश्वास को एक मान लिया जाता है पर यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि दोनों में पर्याप्त भिन्नता है। आस्था में संपूर्णता गहनता तथा तीव्रता होती है जबकि विश्वास बौद्धिक होने के कारण आस्था की तरह स्थाई नहीं होता है। आस्था हृदय परक है तो विश्वास बुद्धि परक है आस्था का विषय आंतरिक है जबकि विश्वास के विषय आंतरिक एवं बाय दोनों है। आस्था स्थाई तथा अपरिवर्तनशील है जबकि विश्वास का परित्याग नहीं किया जा सकता है परिणाम स्वरुप यह अस्थाई तथा परिवर्तनशील होता है। आस्था में आत्मसंलनता तथा सहभागिता का भाव बना रहता है इसलिए व्यक्ति इसमें तटस्थ नहीं रह पाता है जबकि विश्वास में व्यक्ति तटस्थ बना रह सकता है। आस्था जहां व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है वहीं पर विश्वास व्यक्ति के व्यक्तित्व को उतना प्रभावित नहीं कर पता है।

Encyclopedia of religion and ethics मैं विश्वास को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है विश्वास आश्वासन एवं दृढ़ धारणा की मानसिक स्थिति है। यह अपने आंतरिक अनुभूतियों के प्रति मन की वह मनोवृति है जिसमें वह अपने द्वारा निर्दिष्ट वास्तविकता को यथार्थ महत्व या मूल्य के रूप में स्वीकृत तथा समर्पित करता है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि विश्वास तर्कणा से परिपूर्ण है और वास्तविकता के प्रति आसाकारिता का भाव पाते हैं। विश्वास का विभाजन belief in तथा belief that के बीच किया गया है। किसी मनुष्य अथवा ईश्वर की सत्ता में विश्वास belief in कहा जाता है जबकि किसी कथन अथवा प्रतिशप्ति में विश्वास belief that kaha जाता है।

इन दोनों प्रकार के विश्वास के मूल अंतर यह है कि belief in तर्कना से परे है परंतु belief that मैं युक्ति एवं तर्क के लिए समुचित स्थान है इस प्रकार bilief in आस्था के समकक्ष माना जा सकता है आस्था तथा विश्वास में से विश्वास आस्था की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

3.4 आस्था एवं ज्ञान faith and knowledge

आस्था एवं ज्ञान में कुछ अंतर होते हुए भी वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं। प्रायः गलत रूप में ही प्रयोग किए जाने पर दोनों पर विरोध उत्पन्न होता है और जो विचारक आस्था के विरुद्ध ज्ञान का पक्ष लेते हैं वह यह मान लेते हैं कि जब आस्था ज्ञान की विरोधी प्रकट होती है तो केवल वही गलत होती है। जो व्यक्ति आस्था के पक्ष में ज्ञान का बहिष्कार करते हैं वह भी गलती करते हैं। एक ओर वे आस्था को महत्व देते हैं तो दूसरी ओर सत्य संबंधी दावे भी करते हैं वास्तव में दोनों ही दृष्टिकोण एकांगी तथा अतिवादी है। न ज्ञान आस्था का स्थान ले सकता है नहीं आस्था ज्ञान तथा आस्था दोनों ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो जीवन में विकसित होती है। दोनों की उत्पत्ति प्रयोजन मूलक होती है। ज्ञान का संबंध समन्वय तथा सामंजस्य की प्रक्रिया है इसके द्वारा विभिन्न तथ्यों के परस्पर संबंध की व्याख्या एवं सामान्यकरण किया जाता है। आस्था ज्ञान की सीमा से बद्ध नहीं रह सकती जहां तक ज्ञान प्रत्येक कार्य का पथ प्रदर्शक है उसका अनुसरण करना आवश्यक है। किंतु ज्ञान का अनुसरण करने की इच्छा स्वयं एक प्रकार की आस्था है। अतेव आस्था ही ज्ञान का आधार है। धर्म के अतिरिक्त ऐसे कई अवसर है जहां त्याग श्रद्धा आदि की प्रेरणा मिलती है। इन अवसरों पर आस्था ज्ञान के संरक्षण को त्याग देती है।

क्रांतिकारी देशभक्त समाज सुधारक तथा परोपकारी व्यक्ति प्रायः असफलता एवं निराशा के मध्य भी अपने उद्देश्य में आस्था रखते हैं। यद्यपि ज्ञान प्रतिकूल परिणाम की ओर संकेत करता है किंतु आस्था उन्हें निरंतर संघर्ष की प्रेरणादेती है। ज्ञान तथा आस्था एक दूसरे के विरोधी नहीं जो व्यक्तिगत रुचि आस्था में प्रमुख स्थान रखती है वह ज्ञान का भी पथ प्रदर्शन करती है। ज्ञान स्वयं आस्था द्वारा उत्तेजित होता है तथा आस्था में ही समाप्त होता है। दोनों अनुभूत विश्व के प्रति आत्मा की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होते हैं अतएव दोनों ही प्रयोजनमूलक होते हैं जो एक दूसरे के लिए महत्वपूर्ण है वह अंत में दूसरे के लिए भी महत्वपूर्ण होता है।

3.5 आस्था की विशेषताएं

आस्था किसी विचार, आदर्श, मूल्य व्यक्ति या कथन में मनुष्य का वहदृढ़ विश्वास है जिसे वह पर्याप्त एवं विश्वसनीय प्रमाणो के ना होते हुए भी पूर्णतः स्वीकार करता है तथा जिसमें कुछ अनिश्चितता अनिवार्य विद्यमान रहती है। आस्था की सर्वप्रथम विशेषता यह है की आस्था तथ्यों अथवा आध्यात्मिक कथनों या वैज्ञानिक कथनों से संबंध नहीं है प्राय तथ्यपरख कथनों के संदर्भ में आस्था के स्थान पर विश्वास शब्द का प्रयोग होता है ।आस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इससे निबौद्धिकमनोदेश के रूप में विदित किया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है की आस्था के विषयों को तर्किक दृष्टि से प्रमाणित नहीं किया जा सकता है जिस विषय में हमारी आस्था होती है उसे अनुभव,निरीक्षण या तर्कबुद्धि के द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। महान दार्शनिक इमानुएल कांत ने Critiq Of Pure Reason में स्पष्ट कहा है कि ईश्वर आत्मा संकल्प की स्वतंत्रता आदि हमारे ज्ञान के विषय नहीं है इनका तर्कबुद्धि और अनुभव द्वारा ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता है। इन्हें आस्था के आधार पर ही स्वीकार किया जा सकता है।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है की आस्था को निबौद्धिक कहने का यह अभिप्राय नहीं है की आस्था पूर्णतः तर्क विरोधी या बुद्धि विरोधी है। तर्क विरोधी और बुद्धि विरोधी विश्वास आस्था न होकर अंधविश्वास है। आस्था की एक अन्य विशेषता यह है कि यह अनिश्चयात्मक होती है जो विषय निश्चित एवं प्रमाणित होते हैं वह आस्था के विषय ना होकर ज्ञान के विषय हैं।

प्राया तथ्य परक कथनों के सन्दर्भ में आस्था के स्थान पर विश्वास शब्द का प्रयोग होता है। आस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसे' निर्बौध्दिक मनोदशा के रूप में वर्णित किया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आस्था

के विषयों को तार्किक दृष्टि से प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। जिस विषय में हमारी आस्था होती है उसे अनुभव, निरीक्षण या तर्क बुद्धि के द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कान्ट ने -'Critique of Pure Reason" में स्पष्ट कहा है कि ईश्वर, आत्मा, संकल्प की स्वतंत्रता आदि हमारे ज्ञान के विषय नहीं है,इनका तर्कबुद्धि और अनुभव द्वारा ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता है । इन्हे आस्था के आधार पर ही स्वीकार किया जा सकता है।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि आस्थाको निर्बौध्दिक कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि आस्था पूर्णतः तर्क विरोधी या बुद्धिविरोधी है। तर्क विरोधी और बुद्धि विरोधी विश्वास आस्था न होकर अंधविशास है। आस्था की एक अन्य विशेषता यह है कि यह अनिश्चयात्मक होती है। जो विषय निश्चित एवं प्रमाणिक होते है, वे आस्था के विषय न होकर ज्ञान के विषय है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि आस्था की अनिश्चयात्मकता आस्थावान के लिए नहीं है अपितु एक वैज्ञानिक तथा तार्किक दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति के लिए है। आस्थावान तो उस विषय में पूर्ण निश्चित विचार रखता है, जिसमे वह आस्था रखता है।

उदाहरणार्थ- जो व्यक्ति धार्मिक व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व या आत्मा की अमरता में आस्था रखता है वह उनकी अस्तित्वविहीनता की कल्पना तक नहीं करता है। 'उसकी ओर इन विषयों में जिनकी आस्था नहीं होती है, वे इनके अनस्तित्व की न केवल कल्पना करते है अपितु उसके अस्तित्व का खण्डन भी करते है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आस्थावान व्यक्ति की निश्चयात्मकता वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ होती है क्रिर्के गार्ड जैसे-समकालीन अस्तित्ववादी विचारक या आस्थावान मनुष्य भी निश्चयात्मकता को धर्म का अनिवार्य तत्व मानकर इसे विशिष्ट महत्व देते हैं।

आस्था की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका आस्थावान पर अमिट प्रभाव पड़ता है। तथ्य परक सामान्य विश्वास तथा ज्ञान के विपरीत आस्था मानव व्यक्तित्व का अपृथक भाग बन जाती है। जिन तथ्यों सिद्धांतों या मान्यताओं का ज्ञान मनुष्य अनुभव, निरीक्षण प्रयोग या तर्वबुद्धि के द्वारा प्राप्त करता है। वह उसमें परिवर्तन, संशोधन या परित्याग के लिए मानसिक रूप से तैयार रहता है, जबकि आस्था के विषय में यह नही कहा जा सकता है। आस्थावान के विषय के प्रति आस्थावान तटस्थ नहीं रह सकता। विट्गिन्सटाइन ने कहा है कि आस्था एक विशेष प्रकार का जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य को प्रेरित करती है। एक आस्थावान व्यक्ति जिन विषयों में आस्था रखता है, उसी के अनुरूप जीवन व्यतीत करने के लिए वह बाध्यता या प्रतिबद्धता का अनुभव करता है। आस्था का आधार श्रद्धा है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन को उत्प्रेरित करता है।

3.6 प्रमाण

आस्था को प्रमाणों या तर्को के द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। रसेल के शब्दों में हम कह सकते है कि आस्था ऐसा वस्तु में द्रद विश्वास है, जिसके लिए कोई साक्ष्य नहीं हो। जहाँ साक्ष्य हो, वहाँ आस्था को बात ही नहीं की जा सकती है। - दो और दो चार होते है।, पृथ्वी गोल है।, आदि आस्था का विषय नहीं है। हम आस्था की बात नहीं करते है जहाँ साक्ष्य के स्थान पर भावना को प्रस्तुत किया जाता है। अब प्रश्न यह है कि आस्था संज्ञानात्मक है अथवा नही? प्रायः यह कहा जाता है कि आस्था का प्रयोग संज्ञानात्मक और असंज्ञानात्मक दोनों अर्थो में प्रयुक्त होती है।

उदाहरणार्थ मुझे ईश्वर में पूर्ण आस्था है, ईश्वर विश्व का रचयिता है, ईश्वर हमारी प्रार्थना को सुनता है आदि कथन संज्ञानात्मक कथन है। जहाँ धार्मिक व्यक्ति ईश्वर के गुणों एवं कार्यों का ज्ञान प्राप्त करने प्रयास कर रहा रहा है। दूसरी ओर 'मुझे ईश्वर में पूर्ण आस्था है, मुझे अमुक सिद्धान्त में आस्था है।' आदि कथन असंज्ञानात्मक है। यहाँ आस्था के द्वारा

किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया जा रहा है आस्था के इस रूप को प्राय: श्रद्धा सम्बन्धी आस्था' कहा जाता है। जान हिक ने भी इस बात का समर्थन किया है कि आस्था संज्ञानात्मक तथा असंज्ञानात्मक दोनों होती है उनका कथन है आस्था शब्द का प्रयोग संज्ञानात्मकत्था असंज्ञानात्मक दोनों अर्थो में किया जाता है।"

3.7 समीक्षा

समीक्षकों के मत का जहाँ तक प्रश्न है, वे आस्था को विज्ञान की तरह संज्ञानात्मक नही मापने क्योंकि आस्था के विषय, विज्ञान के विषयों की तरह तथ्यपरक या वस्तुपरक नहीं होते हैं। आस्था भावमूलक है, इसमें अभिवृत्ति रहती है तथा इस अभिवृत्ति को युक्तियों के द्वारा समर्पित करना कठिन होता है सभी आस्था का विषय मुक्तिपरक या यौक्तिक नहीं होते है।

वस्तुता आस्था मुक्तिपरक (Rational) अयुक्तिकरक (a-Rational), मुक्तिविरोधी (Irrational) तथा युक्तितटस्थ (Non-rational) हो सकती है। अयुक्तिकरक आस्था उसे कहा जा सकता है, जिसमें युक्तियाँ न अभावात्मक रूप से तथा न अभावात्मक रूप से दी जा सकती है। पुनर्जन्म का सिद्धान तथा आत्मा की अमरता सम्बंधी आस्था इसी कोटि में आती है। मुक्ति विरोधी आस्था वह है कि जिन्हे धार्मिक ज्ञान के विरुद्ध रहने पर भी अपनी आस्था का विषय बनाये रहते है। ईसाकुवांरी या 'मरियम के पुत्र है।" इसी प्रकार की आस्था है। युक्ति तटस्थ आस्था वह है, जहाँ सिद्धांत युक्तियों का स्थान नहीं रहता है। स्वर्ग-नरक न्याय दिवस आदि की अवधारणाएं इसी प्रकार की आस्था के विषय है।

3.8 सारांश

धार्मिक आस्था का सम्बन्ध अनिवार्यतः, किसी दैवी सत्ता तथा अन्य अतिप्राकृतिक विषयों से है। जब कोई व्यक्ति ईश्वर या किसी अन्य देवी-देवता आत्मा, पुनर्जन्म, अवतार। परलोक स्वर्ग परक आदि अतीन्द्रिय अथवा अनुभवातीत विषयों में आस्था रखता है तो हम उसकी इस आस्था को धार्मिक आस्था' की संज्ञा दे सकते है यह अलौकिक धार्मिक आस्था का अनिवार्य तत्व है। धर्म तथा धार्मिक विषयों से अनिवार्यतः सम्बन्ध होने के कारण ही ऐसी आस्था को 'धार्मिक आस्था' कहा जाता है धार्मिक आस्था के अभाव में मानव जीवन के लिए धर्म के अस्तित्व तथा उसकी सार्थकता की कल्पना ही नही की जा सकती। इस प्रकार धार्मिक आस्था को धर्म का मूल आधार माना जा सकता है इस प्रकार निष्कर्षता यह सकते है कि मानव जीवन के लिए धार्मिक आस्था की भूमिका सीमित ही प्रतीत होती है।

3.9 बोध- प्रश्न

1. आस्था से आप क्या समझते हैं ?आस्था और विश्वास में अंतर स्पष्ट कीजिए।

2. क्या आस्था और ज्ञान में अंतर होता है? समझाइए।

3.10 उपयोगी पुस्तकें

1 समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।

2 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।

3 धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

इकाई–4 तर्क

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 धर्म और तर्क बुद्धि के बीच संबंध

4.3 प्रमुख दार्शनिक विचार

4.4 समीक्षा

4.5 सारांश

4.6 बोध प्रश्न

4.7 उपयोगी पुस्तकें

-------------000---------

4.0 उद्देश्य

धर्म और तर्क बुद्धि का संबंध सदियों से दार्शनिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। एक ओर जहाँ धार्मिक विश्वास को अक्सर आस्था, अनुभूति और परंपरा पर आधारित माना जाता है, वहीं दूसरी ओर तर्क बुद्धि को ज्ञान और समझ का एक वैज्ञानिक साधन माना जाता है। इस विषय का उद्देश्य इन दोनों क्षेत्रों के बीच संबंध का गहन विश्लेषण करना है, विशेष रूप से यह समझने के लिए कि तर्क बुद्धि किस प्रकार धार्मिक विश्वासों के निर्माण और समर्थन में भूमिका निभा सकती है।

इस अध्ययन सामग्री में, हम धार्मिक विश्वास और तर्क बुद्धि के बीच के संबंध को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखेंगे। हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक परंपराओं ने इस संबंध को देखा है, और कैसे आधुनिक समय में यह विचार विकसित हुआ है। हम तर्क बुद्धि के विभिन्न रूपों और उनके धार्मिक विश्वास पर प्रभाव का अध्ययन करेंगे, साथ ही यह भी देखेंगे कि कैसे धार्मिक विश्वास तर्क बुद्धि को प्रभावित कर सकता है।

4.1 प्रस्तावना

धर्मदर्शन के अंतर्गत विचारणीय महत्वपूर्ण समस्याओं में धार्मिक ज्ञान व उसके स्वरूप का विवेचन महत्त्वपूर्ण है। इस विषय का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि यह हमें धर्म और विज्ञान, आस्था और तर्क, अनुभूति और बुद्धि जैसे द्वंद्वों के बीच संतुलन खोजने में मदद करता है। यह हमें अपने धार्मिक विश्वासों को और अधिक गहराई से समझने, उनकी तार्किक आधार रेखा को पहचानने, और उन्हें अधिक सुविचारित तरीके से व्यक्त करने में सहायता करता है।

आगे के अनुच्छेदों में, हम इस विषय के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे, जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रमुख दार्शनिक विचार, तर्क बुद्धि के विभिन्न प्रकार, धार्मिक तर्क के उदाहरण, आलोचनाएँ और चुनौतियाँ, और वर्तमान समय में इस विषय की प्रासंगिकता शामिल हैं।

सामान्यता ज्ञान का अर्थ है कि मनुष्य अपने निरिक्षण तथा तर्कबुद्धि के द्वारा जो कुछ जानता है या जान सकता है वह ज्ञान है इस ज्ञान को जाब हम धार्मिक विषयों के संबंध में जैसे- ईश्वर का अस्तित्व आत्मा की अमरता भक्ति इत्यादि विषयों में प्रमुक्त करते हैं तो वह धार्मिक ज्ञान कहलाता है विश्व के प्रमुख धर्मों या धर्म ग्रंथों में भी प्रायः इन्हीं विषयों से संबंधित कथने तथा सिद्धान्तों को धार्मिक ज्ञान के अंतर्गत माना गया है इसके प्रमुख आधार के रुप में तर्कबुद्धि की भूमिका महत्वपूर्ण मिनी जाती हैं जीवन में तकबुद्धि का अत्यधिक प्रभाव है अरस्तू के अनुसार तर्क बुद्धि ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करती है और मनुष्य को उत्कृष्ट बनाती हैं।तर्क बुद्धि द्वारा मनुष्य जीवन तथा जगत की समस्याओं पर बौद्धिक दृष्टि से विचार करने में समर्थ होता है।मनुष्य की यह एक विशेष बौधिक शक्ति है, जिसका संबंध विवेक संकल्प, आदि बौद्धिक क्रिया से अधिक है जिसमें किसी प्रकार की अलौकिकता हेतु कोई स्थान नहीं है धार्मिक दृष्टि से इसका सर्वाधिक योगदान दैव प्रकाशना या रहस्यात्मक अनुभूति को स्पष्ट करने में है।

इस प्रकार की अनुभूतियों की प्रकाशित करने के लिए तथा अन्य व्यक्तियों तक संप्रेषित कर स्थायी बनाने के लिए भाष की आवश्यकता होता हैं, जिसका निर्माण तर्क बुद्धि हारा ही संभव होता है , प्रत्येक धर्म का आधार कोई न कोई श्रुति (जिसे सुनकर लिखा या बताया जाये जैसे कुरान, गोता, वेद आदि)होती है, जो कि सामान्यता रहस्यात्मक अनुभूतियों एवं दैवी सभी प्रकाशना पर आधारित होती है।इन सभी को क्षणिक तथा अस्थाई माना जाता है इसलिए तर्क बुद्धि द्वारा क्षणिकअनुभूतियों को लिपिबद्ध करने एवं संप्रेषित करने में सफलता मिलती है। प्रत्येक धार्मिक ग्रंथो अनेक दुरुह एवं अस्पष्ट तथ्यों का वर्णन होता है। जैसे- उपनिषद् गीता कुरान, बाइबिल आदि धर्म के आधार स्तम्भ है इनके संक्षिप्त सूत्रों का स्पष्टीकरण अपेक्षित है तर्क बुद्धि द्वारा ही दुरुह अंशों की व्याख्या करके स्पष्टीकरण किया जाता है तर्क बुद्धि के अभाव धर्म ग्रंथों काष्टा स्पष्ट व्याख्या संभव नहीं है।

धार्मिक ज्ञान के स्रोत के रूप में तर्क बुदि एक तरफ धर्म को अंधविश्वासों से मुक्त करती है। वहीं दूसरी ओर वस्तुनिष्ठता एवं साम्भौमिकता पुट लाती है यदि धर्म की युगानुरुप व्याख्या करनी हो तो तर्क बुध्दि को स्वीकार करना ही पड़ेगा जब हम विवेक से हटकर अपने अंतःकरण मा मूलप्रवृत्ति पर विश्वास कर लेते हैं तो मुस्किलों में पड़ जाते हैं इस दृष्टि से धार्मिक ज्ञान में तर्क बुद्धि की सदैव आश्यकता रहती है साथ ही धर्म को भविष्य के लिए अयोगी भीबनाये रखती है। यहाँ समस्या है कि क्या तर्क बुद्धि पर आधारित ज्ञान की कमसौटी पर धार्मिक बातों की निश्चित व्याख्या संभव है।

4.2 धर्म और तर्क बुद्धि के बीच संबंध

धर्म और तर्क बुद्धि के बीच संबंध का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का। प्राचीन काल से ही, मनुष्य ने अपने आस-पास की दुनिया और अपने अस्तित्व के अर्थ को समझने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में, धार्मिक विश्वास और तार्किक चिंतन दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं।

प्राचीन यूनानी दर्शन में, सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे दार्शनिकों ने धार्मिक विश्वासों और नैतिक मूल्यों को तर्क बुद्धि के माध्यम से समझने का प्रयास किया। उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि क्या देवताओं का अस्तित्व तर्क से सिद्ध किया जा सकता है, और नैतिकता के लिए धार्मिक आधार की आवश्यकता है या नहीं।

मध्यकालीन यूरोप में, ईसाई धर्म के प्रभाव के साथ, धार्मिक विश्वास और तर्क बुद्धि के बीच संबंध और भी जटिल हो गया। सेंट ऑगस्टीन और सेंट थॉमस एक्विनास जैसे धर्मशास्त्रियों ने ईश्वर के अस्तित्व को तर्क बुद्धि के माध्यम से सिद्ध करने का प्रयास किया। उन्होंने यह तर्क दिया कि विश्वास और तर्क एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं।

इस्लामिक दर्शन में भी, अल-किंदी, अल-फाराबी और इब्न सीना जैसे दार्शनिकों ने तर्क बुद्धि और धार्मिक विश्वास के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने यूनानी दर्शन और इस्लामिक शिक्षाओं के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। भारतीय दर्शन में, न्याय और वैशेषिक जैसे दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को तार्किक रूप से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। बौद्ध धर्म में, तर्क और विश्लेषण को आध्यात्मिक प्रगति का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है।

आधुनिक काल में, विज्ञान के उदय के साथ, धर्म और तर्क बुद्धि के बीच संबंध और भी जटिल हो गया। एक ओर जहाँ कुछ विचारकों ने धर्म और विज्ञान के बीच संघर्ष की स्थिति देखी, वहीं दूसरों ने इन दोनों के बीच समन्वय की संभावना तलाशी। इस प्रकार, ऐतिहासिक रूप से, धार्मिक विश्वास और तर्क बुद्धि का संबंध एक जटिल और गतिशील रहा है, जो विभिन्न सभ्यताओं और काल में अलग-अलग रूपों में व्यक्त हुआ है। तर्क बुद्धि के लिए बोधगम्यता संगति प्रमाणिकता का होना अनिवार्य है। इसका अर्थ हुआ कि विचार, विश्वास या सिद्धान्त का प्रस्तुतीकरण किया जाये तो उसकी भाषा स्पष्ट एवं बोधगम्य होनी मच चाहिए यदि भाषा अस्पष्ट है तो हमारे लिए यह निरर्थक होगी इसी प्रकार विश्वास या सिद्धान्त में पूर्ण संगति भी महत्वपूर्ण है अर्थात् तार्किक दृष्टि से ऐसा चिंतन तभी सार्थक माना जायेगा जब इसमें किसी प्रकार का व्याधान न हो।

पुनः ज्ञान के पक्ष में निश्चित तथा विश्वसनीय प्रमाण होना चाहिए। यदि विश्वास के संबंध में कोई विरुद्ध प्रमाण है तो उसे मिथ्या मानना अनिवार्य हो जाता है। इन कसौटियों के अतिरिक्त व्यापक अर्थ में मानवी अनुभव का भी तर्क बुद्धि के साथ घनिष्ट संबंध है। अनुभव के आधार पर उपयोगी एवं निश्चित निष्कर्ष निकालकर लाभ उठाने की क्षमता मनुष्य को उसकी तर्क बुद्धि ही प्रदान करती है।

तर्क बुद्धि की कसौटियों के संदर्भ में धार्मिक ज्ञान की निश्चित व्याख्या संभव नहीं है धार्मिक ज्ञान आत्मा आदि अतेन्द्रिय सत्ताओं से संबंधित होता है जिसमें बोधगम्यता का अभाव पाया जाता है इसके अतिरिक्त धार्मिक ज्ञान में विरोधाभास या असंगति विद्यमान रहती है पुनः धार्मिक ज्ञान अपरीक्षणीय होता है जिसका संबंध इन्द्रिय जगत या आणविक जगत की वस्तुओ से न होकर अलौकिक जगत से होता है। धर्म परायण व्यक्ति अपने धार्मिक ज्ञान को सदैव अपरिवर्तनशील मानता है उसका यही दृष्टिकोण धार्मिक ज्ञान के प्रति आस्था का रूप ले लेता है जो कि निर्बौधिक अवस्था है।

अतः हमारा समस्त ज्ञान तर्कबुध्दि पर आधारित होता है जबकि धार्मिक ज्ञान आस्था पर ही केन्द्रित रहा है।इस विचार या सत्ता के प्रति मनुष्य का दृढ विश्वास आस्था है जिसे पर्याप्त विश्वनीय होते हुये भो स्वीकार करता है इसलिए। धार्मिक ज्ञान अपने स्वरूप में तर्ककुदि में आधारित ज्ञान से पूर्णता भिन्न होता है मानवीय तर्क बुद्धि के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व आत्मा की अमरता की कोई निश्चित व्याख्या नहीं हो सकती।

उल्लेखनीय है कि आई एच हक्सले जैसे विद्वान मानते हैं कि धार्मिक ज्ञान के संदर्भ में तर्क बुद्धि की भूमिका अप्रसांगिक है उनके अनुसार हमारी सीमित बुध्दि असीमित ईश्वर को जानने में असमर्थ है अतः इस संदर्भ में कुछ भी कहना तर्क संगत नहीं है। जो दार्शनिक धार्मिक ज्ञान का आधार तर्क बुद्धि को नहीं मानते हैं। उनका पक्ष है कि ईश्वर सभी प्रकार के संबंधों से परे है।

अतः विमर्शात्मक बुद्धि के माध्यम से ईश्वर को नहीं सकता है दार्शनिक काष्ट भी परामर्थ को अज्ञेय कहते हैं। पुनः समीक्षकों का स्पष्टीकरण हैं कि बुध्दि के माध्यम से तत्वों को जानने का दावा किया जाता हैं उसकी प्रमाणिकता निर्धारण कौन करेगा ?

4.3 प्रमुख दार्शनिक विचार

धार्मिक विश्वास के आधार के रूप में तर्क बुद्धि की भूमिका पर विभिन्न दार्शनिकों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। यहाँ कुछ प्रमुख दार्शनिक विचारों पर चर्चा की जाएगी।

प्लेटो का दृष्टिकोण: प्लेटो ने अपने "रिपब्लिक" में धर्म और नैतिकता के बीच संबंध पर चर्चा की। उन्होंने तर्क दिया कि सच्चा ज्ञान तर्क बुद्धि से प्राप्त होता है, न कि केवल धार्मिक विश्वास से। उनका मानना था कि धार्मिक कथाओं और मिथकों को तर्क बुद्धि की कसौटी पर कसा जाना चाहिए।

अरस्तू का योगदान: अरस्तू ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए तार्किक तर्क दिए। उन्होंने "पहला कारण" या "अचल चालक" का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार सृष्टि के पीछे एक मूल कारण होना चाहिए, जिसे वे ईश्वर मानते थे।

सेंट ऑगस्टीन का दृष्टिकोण: ऑगस्टीन ने विश्वास और समझ के बीच संबंध पर जोर दिया। उनका प्रसिद्ध कथन था "समझने के लिए विश्वास करो, विश्वास करने के लिए समझो।" उनका मानना था कि विश्वास तर्क बुद्धि की नींव है, लेकिन तर्क बुद्धि विश्वास को और मजबूत करती है।

सेंट थॉमस एक्विनास के विचार: एक्विनास ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए पाँच तार्किक तर्क दिए, जिन्हें "पंच मार्ग" के नाम से जाना जाता है। उन्होंने तर्क दिया कि विश्वास और तर्क एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि दोनों सत्य की ओर ले जाते हैं।

रेने देकार्त का योगदान: देकार्त ने तर्क बुद्धि को ज्ञान का प्राथमिक स्रोत माना। उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए तार्किक तर्क दिए, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि ईश्वर की धारणा हमारे मन में है, और यह धारणा केवल एक पूर्ण सत्ता द्वारा ही दी जा सकती है।

इमैनुएल कांट के विचार: कांट ने तर्क दिया कि परंपरागत ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण अपर्याप्त हैं। हालाँकि, उन्होंने यह भी कहा कि नैतिकता के लिए ईश्वर की धारणा आवश्यक है। उनका "नैतिक तर्क" कहता है कि यदि नैतिकता वास्तविक है, तो ईश्वर का अस्तित्व होना चाहिए।

विलियम जेम्स का प्रैग्मेटिक दृष्टिकोण: जेम्स ने तर्क दिया कि धार्मिक विश्वास का मूल्यांकन उसके व्यावहारिक परिणामों के आधार पर किया जाना चाहिए। उनका मानना था कि यदि कोई विश्वास व्यक्ति के जीवन को बेहतर बनाता है, तो उसे स्वीकार किया जा सकता है।अल्विन प्लांटिंगा का तर्क: प्लांटिंगा ने "वारंटेड क्रिश्चियन बिलीफ" में तर्क दिया कि ईसाई विश्वास तर्कसंगत हो सकता है, भले ही उसे पूरी तरह से सिद्ध न किया जा सके। रिचर्ड स्विनबर्न का बेयेसियन दृष्टिकोण: स्विनबर्न ने बेयेसियन तर्क का उपयोग करके ईश्वर के अस्तित्व की संभावना का मूल्यांकन करने का प्रयास किया। उन्होंने तर्क दिया कि विश्व की जटिलता और नियमितता ईश्वर के अस्तित्व के पक्ष में एक मजबूत तर्क प्रस्तुत करती है।
एंथनी फ्लू का परिवर्तन: लंबे समय तक नास्तिक रहने के बाद, फ्लू ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों मं ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया। उन्होंने तर्क दिया कि जीवन की उत्पत्ति और ब्रह्मांड की जटिलता को समझने के लिए एक बुद्धिमान डिजाइनर की आवश्यकता है।

इन विभिन्न दार्शनिक विचारों से स्पष्ट होता है कि धार्मिक विश्वास और तर्क बुद्धि के बीच संबंध एक जटिल और बहुआयामी विषय है। कुछ दार्शनिकों ने तर्क बुद्धि को धार्मिक विश्वास के समर्थन में इस्तेमाल किया है, जबकि अन्य ने

इसका उपयोग धार्मिक दावों की आलोचना के लिए किया है। यह विविधता इस बात को रेखांकित करती है कि तर्क बुद्धि और धार्मिक विश्वास के बीच संबंध एक सरल द्विभाजन से परे है।

4.4 समीक्षा

धार्मिक विश्वास के आधार के रूप में तर्क बुद्धि की भूमिका पर कई आलोचनाएँ और चुनौतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। यहाँ कुछ प्रमुख आलोचनाओं और चुनौतियों पर चर्चा की जा रही है:

तर्क की सीमाएँ: कई दार्शनिकों का मानना है कि तर्क बुद्धि की अपनी सीमाएँ हैं और वह धार्मिक विश्वास जैसे व्यक्तिगत और भावनात्मक विषयों को पूरी तरह से समझने या समर्थन करने में असमर्थ हो सकती है। उदाहरण: डेविड ह्यूम ने तर्क दिया कि हम कारण-प्रभाव संबंधों के बारे में निश्चित ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते, जो कई धार्मिक तर्कों का आधार है। विश्वास बनाम तर्क: कुछ धार्मिक विचारकों का मानना है कि धार्मिक विश्वास मुख्य रूप से आस्था पर आधारित होता है, न कि तर्क पर। वे तर्क करते हैं कि तर्क बुद्धि का अत्यधिक उपयोग विश्वास के मूल तत्व को कमजोर कर सकता है। उदाहरण: सोरेन किर्केगार्ड ने तर्क दिया कि ईश्वर में विश्वास एक "छलांग" है जो तर्क से परे है। तर्क की व्याख्या: एक ही तर्क की विभिन्न व्याख्याएँ हो सकती हैं, जो विभिन्न निष्कर्षों की ओर ले जा सकती हैं। यह धार्मिक विश्वास के लिए तर्क के उपयोग को जटिल बना देता है।

उदाहरण: कॉस्मोलॉजिकल तर्क की विभिन्न व्याख्याएँ ईश्वर के अस्तित्व, बहुदेववाद, या यहां तक कि नास्तिकता का समर्थन करने के लिए की जा सकती हैं। विरोधाभास और अस्पष्टता: कई धार्मिक अवधारणाएँ तार्किक विरोधाभासों या अस्पष्टताओं से भरी होती हैं, जो उन्हें तर्क बुद्धि के माध्यम से पूरी तरह से समझना कठिन बना देती हैं।

4.5 सारांश

- स्पष्टतया मानव ज्ञान की यह सीमा है कि वह अपनी तर्क बुद्धि, यहाँ तक व्यापक अर्थ में इन्द्रिय अनुभव के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से धार्मिक ज्ञान से जुड़ी अलौकिक सत्ता की व्याख्या नहीं कर पाता। अतः धार्मिक ज्ञान में तर्कबुद्धि ज्ञान की सीमित भूमिका है इसीलिए तर्क बुद्धि के बजाय धार्मिक ज्ञान को श्रुति एवं रहस्यात्मक अनुभूति के आधार पर ,आस्था के द्वारा ही व्याख्यायित किया जाता है।

4.6 बोध प्रश्न

1 धार्मिक विश्वास के आधार के रुप में तर्क बुद्धि की भूमिका का परीक्षण कीजिए।

2. क्या तर्क बुद्धि धार्मिक विश्वास , धार्मिक मान्यताओं के संबंध में सकारात्मक रूप से सहायक है?

4.7 उपयोगी पुस्तकें

1 समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।

2 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।

3 धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

-----------------0000----------------

इकाई–5 दैवी प्रकाशना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 परिभाषा एवं अर्थ

5.3 सारांश

5.4 बोध- प्रश्न

5.6 उपयोगी पुस्तकें

--------------------0000----------------

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई में देवी-प्रकाशना पर विस्तृत चर्चा की गयी है। यह दैवी प्रकाशना धर्म दार्शिनिकों द्वारा बताये गये धार्मिक विश्वास को चार आधारों में से एक है। यहाँ न केवल दैवी प्रकाशना के बारे में विचार किया गया है बल्कि उससे सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाएं भी दी गयी है। इसके अतिरिक्त ईकाई के अन्त में आप विभिन्न प्रमाणों तथा आधारों पर भी विस्तृत चर्चा की गयी है।

5.1 प्रस्तावना

दैवी प्रकाशना धार्मिक विश्वास का महत्वपूर्ण आधार है। किसी अप्रकासित विषय को प्रकाशित करना ही प्रकाशना है। धार्मिक क्षेत्र में सदैव - प्रकाशना का आशय उस माध्यम से है, जिसके द्वारा ईश्वर स्वयं मनुष्यो को अपने विषय में जानकारी देता है ताकि मानव जीवन में लाभ प्राप्त कर सके। दैव प्रकाशना के द्वारा ईश्वर अपने स्वरूप एवं अस्तित्व को प्रकासित करता है।

5.2 परिभाषा एवं अर्थ

दैव प्रकाशना का अर्थ है - ईश्वर या दैवी सत्ता का आत्मा- प्रकाशन या स्वयं को प्रकासित करता। उसे दैवी सत्ता का अभिव्यक्तिकरण (divine- self-disciare) भी कहा जा सकता है। Cathalic Encyclopedia में दैवी प्रकाशना को ईश्वर द्वारा बौद्धिक प्राणियों के बीच असाधारण साधन के द्वारा कुछ सत्यों के प्रकटीकरण के रूप में परिभाषित किया गया है। एच. डी. लेविस ने अपनी पुस्तक 'The Philosophy of Religion' में दैवी प्रकाशना को इस प्रकार

पारिभाषित किया है- " दैवी प्रकासना (ईश्वरीय प्रकाशना) के माध्यम से ईश्वर हमें जानकारी देता है कि उसका स्वरूप क्या है तथा वह क्या हमसे अपेक्षा करता है।"

जान हिक देव प्रकाशना के बारे में कहते है कि" दैव प्रकाशना मानव की दैव प्रमाणित सत्यों का प्रकर्ताकरण है।" हिक का मानना है कि मनुष्य सीमित होने के कारण ईश्वरीय गुणों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में अक्षय है क्योंकि ईश्वरीय गुण असीम तथा उच्चतम है जबकि मानवीय गुण असीम है। अतः ये गुण मानव को ईश्वर द्वारा स्वयं बतलाये गये है। दैवी संदेश की अभिव्यक्ति आकाशवाणी, चमत्कार या अन्तर्बोध आदि के माध्यम से होती है। दैवी प्रकाशना को हम विश्व को ईश्वरीय देन के रूप में अभिहीत कर सकते हैं। इस प्रकार दैवी प्रकाशना के माध्यम से ईश्वर मनुष्य को सत्य की जानकारी देता है। यह जानकारी साधारण ढंग से नहीं बल्कि चमत्कारी ढंग से देता है।

दैव- प्रकाशना में सक्रिय ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है, साथ ही यह भी विश्वास किया जाता है कि ईश्वर में सत्यों को प्रदान करने की क्षमता निहित होती है। इसके अतिरिक्त दैव-प्रकाशना में बौद्धिक प्राणियों की भी सत्तास्वीकार की जाती है जो सत्यों की ग्रहण करता है। दैव प्रकाशना विश्व को ईश्वरीय देन है, जिसका बोध केवल ईश्वरवादियों को ही हो सकता है। धर्म के क्षेत्र में एक धार्मिक ईश्वर के बारे में अधिक से अधिक जानना चाहता है। वह ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करना चाहता है-

या ईश्वर के साक्षात्कार की इच्छा रखता है। उसमें ईश्वर से मिलने की व्यग्रता या उत्सुकता या तड़प होती है। ईश्वर भी स्वयं को मानव के समक्ष तभी प्रस्तुत करता है जब मानव ईश्वर की ग्राह्यता में सक्षम सिद्ध होता है। धर्मशास्त्रों में भी ईश्वर की प्रकाशना विशेष रूप में दिखायी पड़ती है। गीता, बाइबिल, कुरान, आदि में ईश्वर की प्रकाशना देखी जाती है।

अनेक धर्मो में कुछ ऐसे महापुरुषों का उल्लेख हैं, जिन्हे नबी का अवतार कहा जाता है, जिन्हें जीवन एवं निधन से दैवी प्रकाशना की झलक मिलती है। उदाहरण के लिए ईसा, भगवान राम, कृष्ण, मूसा तथा पैगम्बर ऐसे ही महापुरुष है जिनके जीवन की घटनाओं से दैवी प्रकाशना को झलक मिलती है। शब्द तथा घटना के माध्यम से अभिव्यक्त दैवी प्रकाशना में भेद किया जा सकता है। शब्दों के रूप में संकलित दैवी प्रकाशना का उदाहरण वेद, बाइबिल आदि श्रुतियों से मिलता है, घटनाओं के रूप में दैवी संदेश की अभिव्यक्ति आकाश वाणी या चमत्कार के माध्यम से होती है।

धार्मिक अनुभूति के आधार पर सामान्य तथा विशिष्ट दैवी प्रकाशना में भेद किया जा सकता है। विश्व की अनेक वस्तुओं तथा घटनाओं में धार्मिक व्यक्ति को सन्देश प्राप्त होता है। इसके विपरीत चमत्कार आदि विशिष्ट घटनाओं के माध्यम से विशिष्ट दैवी प्रकाशना अभिव्यक्त होती है। विलियम टेम्पल ने 'Nature of god" नामक पुस्तक में ईश्वर के आत्मप्रकाशन तथा अन्य कार्यों के मध्य विभेद का निवेध अवलोकनार्थ है। उनके विचार थे कि ईश्वर के समस्त कार्य उसके स्वरूप की प्रकाशना करते हैं। भारतीय दर्शन में श्रीमद्भगवतगीता में भी स्पष्टता ईश्वर के अवतरित होने की बात को स्वीकार किया गया है। अद्वैत वेदान्ती शंकरचार्य भी प्रतिपादित करते हैं कि ब्रह्मज्ञान के द्वारा जीवमुक्त हो जाने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। विशिष्टाद्वैत के संस्थापक आचार्य रामानुज ने भी श्रीभाव्य' में कहा है कि ध्यान, भक्ति तथा आत्मसमर्पण द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार संभव है। इन विभिन्न विचारों के उपरान्त दैव प्रकाशना के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठाये जाते है कि मानव को दैव प्रकाशना की आवश्यकता किस परिस्थिति में पड़ती है? क्या दैव प्रकाशना परीक्षणीय है? दैव प्रकाशना का स्वरूप क्या है?

जहाँ तक दैव प्रकाशना की आवश्यकता का प्रश्न है कहा जा सकता है कि मानव की दैव प्रकाशना की आवश्यकता जीवन में उपस्थित व्यावहारिक समस्याओं के आलोक में पड़ती हैं। मनुष्य मूलता धार्मिक प्राणी है वह ईश्वर साक्षात्कार की तड़प कामना सदैव करता है। ईश्वरीय साक्षात्कार की तड़प उसमें सदैव बनी रहती है। दैव प्रकाशना मानव की इस

व्यग्रता एवं तड़प का प्रतिफल है। क्या दैव प्रकाशना परीक्षणीय है? इस सम्बंध में कहा जा सकता है कि दैव प्रकाशना परीक्षणीय नहीं है क्योंकि हम केवल उन्हीं वस्तुओं को जान सकते है जो हमारी दृष्टि सीमा में विद्यमान है। परीक्षणीय न होने पर भी दैवी प्रकाशना को भ्रामक नहीं सिद्ध किया जा सकता क्योंकि उसे भ्रामक मानना ईश्वर की आत्म प्रकाशन भक्ति को भ्रामक कहना है कोई भी व्यक्ति ईश्वर को पूर्णरूप से नहीं जान सकता क्योंकि वह अबाध है। वह तो केवल हमारी श्रद्धा का आधार है। ईश्वर विभिन्न साधनों के माध्यम से अपने को प्रकाशित करता है ताकि मानव का मार्गदर्शन हो सके। ईश्वर स्वयं किसी न किसी रूप में मानव के निर्देशन हेतु जगत में अवतार ग्रहण करता है जैसा कि गीता में कहा गया है

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्

ईश्वर सृष्टि द्वारा स्वयं को प्रकाशित करता है क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है। ईश्वर स्वयं को धर्मशास्त्रों, वेद, उपनिषद, कुरान बाइबिल आदि द्वारा भी स्वयं को प्रकाशित करता है क्योंकि धर्म शास्त्र ईश्वरीय आदेशों का संकलन है। ईश्वर कभी कभी आकाशवाणी, दित्यस्वप्न, दित्यदर्शन संत तथा साधुओं के माध्यम से भी स्वयं को अभिव्यक्ति करता है। दैव प्रकाशना में ईश्वर की सत्ता को पूर्ण मान्यता के रूप में मानना अनिवार्य है। ईश्वर ही सत्यों का प्रकाशन करता है।

दैवी प्रकाशना की सत्यापनीयता तथा प्रमाणिकता का विचार करते समय एक प्रश्न उसके स्वरूप के बारे में भी उठता है। इस प्रकार के प्रश्न का औचित्य उस तथ्य से निर्धारित होता है कि एक ही श्रुति के अन्तर्गत परस्पर विरोधी कथन सम्मिलित रहते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि श्रुतियाँ या धर्मशास्त्र के ज्ञान के साधन है इस प्रकार अनेक श्रुतियाँ या धर्मशास्त्र अपने अपने तरीकों से इसके स्वरूप की विवेचना करते है अतः इस प्रश्न का कोई न्यायोचित या एकांगी उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है। दैवी प्रकाशना के सम्बन्ध में उठने वाले अनेक प्रश्नों के समाधान "का प्रयास धर्म दार्शनिकों एवं धर्मशास्त्रियों द्वारा किया गया है।

कभी कभी भ्रान्त धारणाओं के कारण कुछ लोग दैवी प्रकाशना का अनुभव प्राप्त करने का दावा करते हैं जिसके कारण वास्तविक दैवी प्रकाशना तथा अवास्तविक दैवी प्रकाशना के मध्य अन्तर कर पाना कठिन होता है। सामान्यतया दैवी प्रकाशना को मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से परे अलौकिक अनुभूति माना जाता है इसलिए प्रत्यक्ष के द्वारा इसकी प्रमाणिकता सिद्ध नहीं की जा सकती।

5.3 सारांश

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि दैवी प्रकाशना तर्क, बुद्धि या इन्द्रियानुभव पर आधारित न होकर आस्था या श्रद्धा पर आधारित अवधारणा है ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि ईश्वरीय कृपा प्राप्त करके ही सन्त या पैगम्बर के दिव्य चक्षुओं से ईश्वरीय सत्ता का साक्षात्कार किया जा सकता है बल्कि इसके विपरीत अगर किसी भौतिक प्रामाणिकता के आधार पर इसे सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है तो यह पूर्णतया भ्रामक या मिथ्या होगी। दैवी प्रकाशन। केवल आस्तिकों को ही होती है नास्तिकों को नही । अतः यह स्मरणीय होगा कि दैवी प्रकाशना मिथ्या धारणा की स्थापना नही करते यदि कोई भी देवी प्रकाशना मिथ्याउम्बर या भ्रान्त धारणा का पोषण करती है तो वह भ्रामक देवी प्रकाशना होगी वास्तविक नहीं।

5.4 बोध- प्रश्न

1. दैवी प्रकाशना से आप क्या समझते हैं इसमें ईश्वर जैसी किसी सत्ता का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है?

2 दैवी प्रकाशना और तर्क बुद्धि में क्या अंतर है?

5.6 उपयोगी पुस्तकें

1 समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।

2 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।

3 धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

-----0000---------

इकाई 06- रहस्यानुभूति

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 धार्मिक अनुभूति

6.3 धार्मिक अनुभव का क्षेत्र

6.4 धार्मिक अनुभूति का महत्व

6.5 समीक्षा

6.6 रहस्यवाद

6.7 भारतीय रहस्यवाद की विशेषताएं

6.8 समीक्षा

6.9 सारांश

6.10 बोध- प्रश्न

6.11 उपयोगी पुस्तकें

-----------------00000---------------

6.0 उद्देश्य

प्राय: विभिन्न धर्म में , उनके धर्म ग्रंथो में, सूफी मत, इत्यादि में रहस्य अनुभूति का वर्णन मिलता है । रहस्यवादी दार्शनिकों ने रहस्य अनुभूति को धार्मिक विश्वास का आधार माना है । रहस्यवाद को स्वीकार करने वाले प्रायः निर्गुण, निराकार, परम तत्व को स्वीकार करते हैं। रहस्यवाद में भगवान एवं साधक के बीच तादात्म्य जैसी बातें स्वीकार की जाती हैं।

इस इकाई के अंतर्गत हम या जानने का प्रयास करेंगे कि रहस्यवाद क्या होता है? रहस्यवाद धार्मिक अनुभूति के रूप में किस प्रकार अतींद्रिय सत्ता का ज्ञान प्राप्त करता है । रहस्यवाद का धार्मिक क्षेत्र में क्या भूमिका है? भारतीय एवं पाश्चात्य रहस्यवाद का स्वरूप क्या है एवं रहस्यवाद की कमियां क्या है?

6.1 प्रस्तावना

किसी अतीन्द्रिय या दैवी सत्ता पर पूर्व निर्भरता, उसके प्रति अखण्ड श्रद्धा, सम्मान, प्रेम आत्म समर्पण व पूजा की भावना धार्मिक अनुभव के अनिवार्य मूल तत्व है जो उसे अन्य सभी प्रकार के अनुभवों से पृथक करते हैं और उसे

विशेष प्रकार का अलौकिक अनुभव बताते हैं। यद्यपि धार्मिक अनुभव की कोई निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा करना बहुत कठिन है। तथापि यह कहा जा सकता है कि अधिकतर दार्शनिकों के अनुसार भक्तों एवं धर्मपरायण व्यक्तियों को किसी अलौकिक या दैवी सत्ता का जो विशेष प्रकार का अनुभव प्राप्त होता है। उसे धार्मिक अनुभव की संज्ञा दी जा सकती है।

6.2 धार्मिक अनुभूति

एडोल्फ आटो ने अपनी पुस्तक ''द आइडिया आफ होली'' में इस धार्मिक अनुभव के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की है।

आटो के अनुसार धार्मिक अनु भव में बौद्धिक एवं निर्बौद्धिक दोनों तत्व विद्यमान है। फिर भी इनमें निर्बौद्धिक तत्वों की प्रधानता होती है क्योंकि धार्मिक अनुभूति मूलतः विचारात्मक न होकर भावनात्मक होती है। धार्मिक अनुभव को अवर्णनीय कहा जा सकता है क्योंकि जो व्यक्ति इससे अपरिचित हैं उसे इसका ज्ञान ही नहीं कराया जा सकता। आटो के मतानुसार ''यह अपूर्णनीयता धार्मिक अनुभव की अनिवार्य विशेषता है।''

जो तत्व धार्मिक अनुभव को अन्य सभी अनुभवों से अलग करता है जो इसका मूलतत्व है उसे आटो दिव्यतत्व या दिव्यानुभूति की संज्ञा देते हैं। यह दिव्यानुभूति वस्तुतः निर्बौद्धिक तत्व है इसे भाषा, विचार अथवा किसी अन्य माध्यम से पृथक नहीं किया जा सकता। आटो के अनुसार इस अनुभूति में भय एवं श्रद्धायुक्त बिस्मय, रहस्यात्मकता एवं प्रेममय तीव्र आकर्षण ये तीन तत्व अनिवार्यता समान रहते हैं।

धर्म परायण व्यक्ति अपने उपास्य विषय के प्रति एक विशेष प्रकार का धार्मिक संवेग का अनुभव करता है। जिसे भय व श्रद्धायुक्त विस्मय की संज्ञा दी जाती है। अपने आराध्य के समक्ष स्वयं को धूल या राख के समान तुच्छ समझता है। आराध्य की असीम शक्ति और महत्ता के कारण आराधक आश्चर्य चकित हो जाता है और उपास्य के प्रति भव व श्रद्धा से मिश्रित विस्मय का अनुभव करता है। उपासक, उपास्य विषय के स्वरूप को समझने में असमर्थ होने के कारण उसे अन्य सांसारिक विषयों से भिन्न पाता है और उपास्य उसे रहस्यमय प्रतीत होता है और सदा अबोधगम्य और रहस्यमय ही बना रहता है। अबोधगम्य और रहस्यात्मक होते हुए भी यह आराध्य विषय उपासक को अपनी ओर अत्यधिक आकर्षित करता है, इस आकर्षण से प्रेरित होकर वह उपास्य से प्रेम करने लगता है। और अपने आपको उसके प्रति पूर्णतः समर्पित कर देता है।

6.3 धार्मिक अनुभव का क्षेत्र

धार्मिक अनुभव का क्षेत्र बहुत व्यापक है क्योंकि यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मानव जीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं की प्रभावित करता है। सामान्यतः इस अनुभव को भावना प्रधान माना जाता है जो उचित ही है, किन्तु इसमें भावना के साथ-साथ ज्ञान और कर्म भी अवश्य विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक भक्त या उपासक किसी दैवी सत्ता में अपने विश्वास को असंदिग्ध रूप से सत्य मानता है। उसके अनुसार विश्वास का संबंध दैवी सत्ता के ज्ञान से है। ज्ञान के साथ-साथ भावना का भी धार्मिक अनुभव में महत्वपूर्ण स्थान है। पुनश्च उपासक किसी दैवी सत्ता के अस्तित्व में केवल विश्वास नहीं करता अपितु उसकी पूजा करता है और अगाध प्रेम करता है। पूजा और समर्पण की इस भावना के अभाव में धार्मिक अनुभव का अस्तित्व ही संभव नहीं है।

धार्मिक अनुभव में पूजा और समर्पण की भावना की उपस्थिति के साथ-साथ विशेष कर्म के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति भी आवश्यक है। वाह्य कर्मकाण्ड के माध्यम से भक्त अपने को उपास्य विषय के साथ संबद्ध करता है। यही धार्मिक अनुभव का क्रियात्मक पक्ष है जो अन्य अनुभवों में नहीं पाया जाता अतः धार्मिक अनुभवों में भी ज्ञान भावना तथा क्रिया तीनों तत्व अनिवार्यतः उपस्थित है।

धार्मिक अनुभव की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें इन्द्रियजन्य अनुभव, सौन्दर्यात्मक अनुभव तथा नैतिक अनुभव इन तीनों का समुचित समाधान रहता है। इन्द्रियजन्य अनुभव के द्वारा उपासक पवित्र धर्म ग्रन्थों, मूर्तियों या अन्य धार्मिक वस्तुओं को देखता है एवं प्रार्थना व कीर्तन में प्रयुक्त शब्दों व संगीत की ध्वनि सुनता है। इन्द्रियजन्य अनुभव के अभाव में न तो धार्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति संभव है और न ही वह हमारे लिए बोधगम्य हो सकता है। सौन्दर्यात्मक अनुभव में भक्त अपने उपास्य विषय से संबद्ध सभी क्रियाओं को सुंदर देखना चाहता है और उन्हे अधिकाधिक आकर्षक और मोहक बनाने का प्रयास करता है। नैतिकता धर्म का अनिवार्य तत्व है। जब भक्त नैतिक नियमों व आदर्शोंिं के अनुरूप आचरण करता है तो उसे विशेष आत्मसंतोष का अनुभव होता है।

6.4 धार्मिक अनुभूति का महत्व

धार्मिक अनुभूति स्वयं सिद्ध होती है। धार्मिक अनूभूति कई रूपों में उपलब्ध होती है। तीब्र एवं समृद्ध होने पर अनुभववादी रूप धारण कर लेती है। प्रत्येक धार्मिक अनुभूति में रहस्यवादी तत्व उपस्थित रहता है। अतः धार्मिक अनुभूति स्वरूपतः रहस्यात्मक होती है। धार्मिक अनुभूति का चरमोत्कर्ष रहस्यानुभूति है। आरंभ धार्मिक अनुभूति से होता है और अंत रहस्यानुभूति होता है। इस स्थिति में जो सत्ता हमारी अनुभूति में परिणत हो जाती है। धार्मिक अनुभूति के चरमोत्कर्ष में अनुभूत अनुभाविता का द्वैत समाप्त हो जाता है। वस्तुतः रहस्यानुभूति और धार्मिक अनुभव एकदम भिन्न नहीं वरन इस का विकास है। विलियम जेम्से के अनुसार ''धार्मिक अनुभूति रहस्यात्मक चेतना पर अभिभूत चेतना पर अभिभूत एवं केन्द्रित है।''

स्पष्ट है कि धार्मिक अनुभूति का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। एक ओर यह सर्वेश्वरवादी तथा तीव्र रहस्यवादी अनुयायियों के रूप में तथा दूसरी ओर सीमित एवं साधारण मर्मज्ञता के रूप में प्रकट होती है अतः ईश्वर प्राप्ति हेतु अनिवार्य है। धार्मिक अनुभूति की ईश्वर साक्षात्कार में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। धार्मिक अनुभूति का चरम लक्ष्य सामान्यतः ईश्वरानुभूति ही है। (निरीश्वरवादी धर्मों को छोड़कर) रहस्यानुभूति धार्मिक अनुभूति का ही पूर्णतयः विकसित और गहन रूप है। स्वयं रहस्यवादी भी कहता है कि उसे परम तत्व ईश्वर को साक्षात् अनुभव होता है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक रहस्यवादी ईश्वर को छोड़कर प्राप्त कर सकता है।

वेदान्त के तत्वमसि के अनुसार साधक परमतत्व में विलीन हो जाता है। ईश्वर वादियों के अनुसार भक्त स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर देता है। ईसाई रहस्यवाद के अनुसार उपासक ईश्वर से संबंधित हो जाता है। इस्लामिक अनुभव वाद के अनुसार मनुष्य ईश्वर प्राप्त कर लेता है तब उसी के अनुसार कार्य करता है। यह सभी उदाहरण एक रहस्यवादी द्वारा ईश्वर प्राप्ति के विविध रूपों को दर्शाते हैं।

किंतु धार्मिक अनुभूति में ईश्वर साक्षात्कार अनिवार्यतः हो यह आवश्यक नहीं। अनिवार्यता तभी होगी जब वह ईश्वरवादी रहस्यवादी हो। ऐसी भी अनुभूति संभव है जिसमें ईश्वर की अनुभूति न हो, यथा बौद्ध तथा जैन रहस्यवाद। इस प्रकार निरीश्वरवादी धर्म में धार्मिक अनुभूति तो संभव है किंतु ईश्वर से सक्षात्कार अनिवार्यतः संभव है किंतु ईश्वर से साक्षात्कार अनिवार्यतः संभव नहीं।

6.5 समीक्षा

उपर्युक्त सिंद्धांत के विरुद्ध यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि एक ओर तो वह दिब्यानुभूति को ऐसा निर्बौद्धिक तत्व मानते है जिसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है और दूसरी ओर वे इस तत्व का सविस्तार वर्णन भी करते हैं जिसमें उनके विचारों में असंगति आ जाती है। दूसरी आलोचना यह हे कि जिन भावनााओं को वे धार्मिक अनुभव की अनिवार्य भूल विशेषताएं मानते है वे मनुष्य की सामान्य अनुभव के साथ भी संबद्ध हो सकती है। पुनः मनुष्य की व्यक्तिनिष्ठ धार्मिक अनुभव के आधार पर ईश्वर की वस्तुनिष्ठ सत्ता और उसके विशेष स्वरूप का जो दावा किया है, वह उचित एवं युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता।

इन आलोचानाओं के बावजूद कुछ समकालीन दार्शनिकों ने धार्मिक अनुभव के विषय में आटो के इस निष्कर्ष को वास्तविक अर्थ में स्वीकार किया है कि यह अनुभव अवर्णनीय है। जिसमें विटगंेस्टाइन एवं मैकफरसन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। धार्मिक अनुभव के विषय में '' ट्रेक्टेटस लाजिकों फिलासाफिकस'' में विटगेंस्टाइन का मत है कि यह अनुभव रहस्यात्मक होने के कारण वस्तुतः अवर्णनीय हो इसका संबंध ऐसी रहस्यात्मक सत्ता से हे जिसके विषय में सार्थकता पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। थामस मैकफरसन भी यह मानते हैं कि धर्मविषयक कुछ बातों के संबंध में हमारे लिए मौन रहना ही एकमात्र उचित विकल्प है क्योंकि उनके विषय में हम कुछ कह नहीं सकते।

किन्तु यहां कठिनाई यह है कि ऐसी स्थिति में धार्मिक अनुभव को धर्मदर्शन की परिधि से परे मानना पड़ेगा, जिसके कारण इस अनुभव के स्वरूप की व्याख्या और उनकी प्रमाणिकता की व्याख्या करना संभव नहीं होगा।

6.6 रहस्यवाद

प्राचीन काल से सभी धर्माें के महान संत यह दावा करते हैं कि उन्होंने जीवन से ऐसा अनुभव प्राप्त कर लिया है जो सांसारिक अनुभव से नितांत भिन्न है। इसी कारण रहस्यात्मक अनुभव कहा जा सकता था। रहस्यवाद का संबंध उनके इसी अनुभव से है। उनके अनुसार यह ऐसा अनुभव जिसके विषय में कुछ भी कहना संभव नहीं है अर्थात् रहस्यवाद वह स्थिति है जिसमें पंहुचकर मनुष्य मौन रहने के अतिरिक्त और कुछ ही नहीं कर सकता क्योंकि वह भाषा के माध्यम से इसे अभिव्यक्त करने में असमर्थ पाता है।

रहस्यवाद को स्पष्ट करते हुए केयर्ड ने कहा कि रहस्यवाद मन की वह प्रवृत्ति है जिसमें सभी प्रकार का संबंध आत्मा और ईश्वर के संबंध विहीन हो जाता है। प्रो0 ब्राइटमैन ने इसे दैवीय सत्ता की अपरोक्षानुभूति कहा है, एडोल्फ आटो ने इसे विलक्षण तथा अपने आप में अनूठा कहा है। उपनिषद ने इसके बारे में नेति-नेति कहा है, उपनिषद ने इसके बारे में नेति -नेति को ही साधन बताया।

रहस्यवाद की परंपरा सभी भारतीय धर्माें के अतिरिक्त मुस्लिम, ईसाई आदि पाश्चात्य दर्शनों में दिखलाई पड़ती है। इन सभी धर्मों के अनेक महान संतों को रहस्यवादी कहा जाता है, यद्यपि उपनिषद, योग संबंधी साहित्य, बौद्ध ग्रन्थों, सूफी साहित्य एवं ईसाई धर्म के साहित्य में रहस्यवाद का विस्तृत वर्णन मिलता है। किंतु भारतीय एवं पाश्चात्य रहस्यवाद में महत्वपूर्ण अंतर परिलक्षित होते हैं।

6.7 भारतीय रहस्यवाद की विशेषताएं

भारतीय रहस्यवाद, उपनिषदीय रहस्यवाद कहलाता है, जिसकी महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नवत है:-

भारतीय रहस्यवाद में साधक और ईश्वर दोनों एक है मनुष्य और ईश्वर दो अलग-अलग अर्थात् द्वैत नहीं है अपना ज्ञान होना ही ईश्वर को प्राप्त करना है। मनुष्य को अपनी चेतना होना ही ईश्वर को प्राप्त करना है। जब साधक ईश्वर और स्वयं को एक समझ लेता है तो वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। भारतीय रहस्यवाद में अविद्या को ईश्वर साक्षात्कार में बाधक और गुरू को सहायक माना है। अविद्या को दूर करना ही ईश्वर को प्राप्त करना है। अविद्या का तात्पर्य ईश्वर को अपने से अलग समझना। गुरू के द्वारा ही हम अविद्या से दूर हो सकते हैं। यह गुरू की महान शक्ति से प्राप्त होता है। गुरू अपनी आत्मिक शक्ति द्वारा शिष्य को ऊपर उठाता है, ईश्वर को प्राप्त करना उसका लक्ष्य है।

भारतीय परंपरा में प्रत्येक गुरू ने अलग-अलग ढंग से ईश्वर को प्राप्त करने की अवस्थाएं बतलायी हैं इन अवस्थाओं का निश्चित मापदंड नहीं है, यहां बुद्ध एवं पतंजलि द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की अवस्थाओं का वर्णन महत्वपूर्ण है। भारतीय रहस्यवाद को स्पष्ट करने हेतु इनका वर्णन अपरिहार्य है। बुद्ध ने चार अवस्थायें बतायी है -

1. संसार की भौतिक इच्छाओं अथवा अशुभ से विरक्त हो।

2. लगातार हर समय सन्यासी के रूप में रहना।
3. पुनः विरक्त हुए सन्यासी के रूप में रहना।
4. मानसिक क्रियाओं को एकत्रित करना एवं ध्यान लगाना।

इन सभी अवस्थाओं की प्राप्ति के बाद निर्वाण प्राप्त हो जायेगा अर्थात् भक्त ईश्वर सदृश हो जायेगा।

पतंजली ने ईश्वर को योग द्वारा प्राप्त रकने को कहा है। इसके लिए उन्होंने समाधि की अवस्था का चित्रण किया है। इस अवस्था में मन अपने ध्येय विषय में पूर्णतयः लीन हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसको अपना कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, आत्मा या नामधारी व्यक्ति स्वूमत ैमस िअपने वास्तविक स्वरूप भ्पहीमत ैमस ि को पहचान लेती है और मोक्ष को प्राप्त करती है।

6.8 समीक्षा

भारतीय रहस्यवाद की उपर्युक्त विशेषताओं पाश्चात्य रहस्यवादियों ने आपत्ति प्रगट की है, भारतीय और पाश्चात्य रहस्यवादियों के दृष्टिकोण में अंतर होने के फलस्वरूप पाश्चात्य रहस्यवादियों ने आरोपलगाया कि भारतीय रहस्यवाद केवल अपने आप से संबंध रखता है, यहां पर प्रत्येक मनुष्य अपने निर्माण की प्राप्ति के बारे में सोचता है न कि समाज के बारे में। भारतीय रहस्यवादी स्वार्थवादी है सामाजिक नहीं क्योंकि यह व्यक्तिगत उन्नति में सहायक है। पुनश्च स्वयं को ईश्वर के आधीन करना अथवा गुरू आधीन होना निष्क्रियता का परिचायक है। रहस्यवादी अपने ऊपर विश्वास न करके ईश्वर पर विश्वास करता है। यहां रहस्यवादी ईश्वर के ऊपर सभी इच्छाओं और कार्यिं को छोड़कर अकमर्ण्य हो जाता है। जहां तक नैतिकता का प्रश्न है साधक सामाजिक नैतिकता के विषय में विचार नहीं करता है।

वस्तुतः पाश्चात्य रहस्यवाद का आधार ईसाई धर्म का धर्मग्रंथ बाइबिल है, और उसी के अनुरूप आचरण किया जाता है। पाश्चात्य रहस्यवाद के अनुसार ईसामसीह के गुणों के आधार पर चलना चाहिए, उनके अनुसार ईसामसीह को प्राप्त करना ईश्वर को प्राप्त करना है। भारतीय रहस्यवाद से भिन्न इसमें से ईश्वर से एक होना नहीं बताया गया है। ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना और ईश्वर से संबंध रखना ताकि हमारा नैतिक जीवन सुधर सके। संत मास्टर एकहर्ट के अनुसार ‘‘आत्मा आत्मा है ईश्वर, ईश्वर है। हम मनुष्य की आत्मा ईश्वर से एक नहीं है।’’

जहां तक ज्ञान का प्रश्न है ईश्वर का ज्ञान तभी संभव है, जब हम ईश्वर मार्ग पर चलें। मनुष्य को अपना जीवन सुधारना चाहिए, तब वह ईश्वर से संबंध रख सकता है। स्वयं को अथवा अपने मन को बाहरी जगत से अलग करना और अशुभ से दूर रहना।

पाश्चात्य रहस्यवादियों ने ध्यान पर विशेष बल दिया है। साधक को स्वयं के बारे में ध्यान करके अपनी खराबियों को दूर करके ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। ईश्वर साक्षात्कार के विषय में रहस्यवादियों का मत है कि ईसा मशीह को देखना, ईसा मसीह को प्राप्त करना है। मुस्लिम ने अपने रहस्यवाद का नाम सूफीज रखा, मुस्लिम रहस्यवाद की अंतिम परिणति फना है। सूफीज शब्द का तात्पर्य खुदा में एक हो जाना है। सूफीज कहते हैं ‘‘ हमे सत्य अर्थात् ईश्वर की खोज करना है। जिस तरह नदी का जल ममुद्र में जाकर अपना अस्तित्व समाप्त कर लेता है, उसी तरह हमे अपनी रूह खुदा में एक करना है अर्थात् फना करना है।

फना तक पंहुचने के लिए इस्लाम में भी ईश्वर मार्ग बताया गया है, जो तरीका कहलाता है। तरीका ईश्वर तक पंहुचने का मार्ग है। ईश्वर मार्ग की विभिन्न अवस्थाएं तौबा, तर्क ए दुनिया, फकीरी, मुहब्बत, इश्क, तजली, है। इन सभी अवस्थाओं के पश्चात् ईश्वर का ज्ञान होगा जो मुस्लिम में मार्फत कहलाता है। ईश्वरी ज्ञान हो जाने के बाद हम और ईश्वर एक हो जाते हैं अर्थात फना हो जाते हैं। जो वह ईश्वर करेगा हम करेंगें, जिस व्यक्ति की आत्मा यहां तक पंहुचती है वह सूफी कहलाता है।

6.9 सारांश

इस प्रकार भारतीय, ईसाई एवं मुस्लिम रहस्यवाद के उपर्युक्त वर्णन से प्राच्य एवं पाश्यात्य रहस्यवाद में अंतर स्पष्ट होता है। स्पष्ट है कि भारतीय रहस्यवाद में मनुष्य अपने को ईश्वर समझता है और अविद्या को ईश्वर से अलग होने का कारण मानता है। जबकि मुस्लिम एवं ईसाई रहस्यवाद में ऐसा नहीं है। ईसाई रहस्यवाद अपने को ईश्वर से एक नहीं मानता है, मुस्लिम रहस्यवाद के अनुसार हमको ईश्वर में एक होना है, हमको स्वयं को ईश्वर में मिटाना है।

भारतीय रहस्यवाद में जितनी अवस्थाएं है उनका संबंध उनके धर्म ग्रन्थों, वेद, उपनिषद, आदि में है। मुस्लिम में सूफी, कुरॉन से अलग है। सुफी मुस्लिम नहीं होते, मुस्लिम सूफी होते हैं। ईसाई भी पूर्ण रूपेण बाइबल पर आश्रित नहीं होते। पाश्चात्य में साधक जगत में विरक्त नहीं होता है। जबकि भारतीय रहस्यवाद में जगत से विरक्त होने को कहा गया है, इस्लामिक रहस्यवाद में वाह्य दुनिया में रहकर दुनिया की तरक्की करना चाहता है। तथापि धर्म से संबंधित अलौकिक अनुभूति सामान्यतः सभी में समान रूप से पायी जाती है जो इन सभी को रहस्यवादी बनाती है और धार्मिकता का चरम विन्दु हैं।

6.10 बोध- प्रश्न

1. धार्मिक अनुभूति का स्वरूप किस प्रकार का होता है समझाइए।
2. रहस्य अनुभूति से आप क्या समझते हैं विवेचना कीजिए।
3. धार्मिक अनुभूति एवं रहस्य अनुभूति की कमियों का वर्णन कीजिए।

6.11 उपयोगी पुस्तकें

1 समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।
2 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।
3 धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

.......................0000....................

खण्ड–3 ईश्वर का स्वरूप

इकाई–7 निमित्तेश्वरवाद

7.0 उद्देश्यः-

7.1 प्रस्तावनाः-

7.2 केवल निमित्तेश्वर वाद

7.3 केवल निमित्तेश्वरवाद (देववाद) की आलोचना

7.4 निष्कर्षः-

---------------000-------------

7.0 उद्देश्यः-

प्रस्तुत ईकाई में ईश्वर एवं जगत के मध्य सम्बन्ध तथा ईश्वर की अवधारणा सम्बन्धी एक मत निमित्तेश्वरवाद । देववाद । तटस्थेश्वरवाद की विस्तृत विवेचना करता है। इस ईकाई में इस मत की विभिन्न रूपो में चर्चा की गयी है, साथ ही यह अपने स्वरूप में किस हद तक सफल हुआ है का आलोचनात्मक विवेचन भी किया गया है।

7.1 प्रस्तावनाः-

सामान्यतया साधारण बोलचाल की भाषा में धर्म का अर्थ ईश्वर माना जाता है तथा इसी परिप्रेक्ष्य में ही धार्मिक शब्द का अर्थ ईश्वर में विश्वास करने वाले से लिया जाता है परन्तु विभिन्न धर्मो के स्वरूप तथा धर्म दर्शन के इतिहास का अवलोकन करने से पता चलता है कि यद्यवि ईश्वर को अधिकांश धर्मो में केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया है फिर भी कुछ ऐसे धर्म स्थापित हुए है जो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते है इस व्यापक दृष्टि से धार्मिक दर्शन का वर्गीकरण ईश्वरवाद तथा अनीश्वरवादी के मध्य किया गया –

ईश्वरवाद के अन्तर्गत निम्नलिखित सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है- 1.एकेश्वरवाद 2.केवल निमित्तेश्वरवाद 3.अनेकेश्वरवाद 4. सर्वेश्वरवाद द्वैतवाद 5. निमित्तोपादानेश्वरवाद। प्रस्तुत ईकाई में केवल निमित्तेश्वरवाद पर विस्तृत चर्चा की गयी है जो अधोलिखित है -

7.2 केवल निमित्तेश्वर वाद

'Deism' शब्द लैटिन भाषा के 'Deus' शब्द से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है-ईश्वर, अतः डीज्म' शब्द का तात्पर्य भी 'ईश्वरवाद' है इस सिद्धान्त को प्रायः देववाद या तटस्थ ईश्वर वाद के रूप में भी वर्णित किया जाता है। यह सिद्धान्त निरीश्वरवाद या अनीश्वरवाद का घोर विरोधी है। अनीश्वरवाद के विपरीत इस सिद्धान्त के अन्तर्गत ईश्वर की सत्ता में विश्वास किया जाता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी में कई पाश्चात्य विचारकों द्वारा किया गया, जिनमें प्रमुख नाम निम्न है - जान टोलैण्ड (John Tolond), टिंडल (Tindal), चब(Chub) तथा चरबरी के

हर्बर्ट । भारतीय दर्शन में इस सिद्धान्त का उल्लेख अधिकृत रूप से किसी भी दार्शनिक या धार्मिक सम्प्रदाय में नहीं किया जा सकता ऐसी मान्यता है कि न्यूटन, लैपलेस तथा डार्विन के धान्तिक दृष्टिकोण पर यह सिद्धांत आधारित है।

यह सिद्धांत पूर्णतः बौध्दिक दृष्टिकोण के आधार पर ईश्वर तथा जगत के सम्बन्ध व्याख्या करता है इसके अनुसार ईश्वर जगत का रचयिता अवश्य है, किन्तु एक बार इसकी रचना करने के पश्चात वह उसकी कार्यप्रणाली में कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। यह जगत एक विशाल यन्त्र के समान है, जो ईश्वर द्वारा निमित्त बौद्धिक प्राकृतिक नियमों के आधार पर संचालित होता है। जगत की समस्त वस्तुत, घटनाएं तथा कार्य प्रणालियों की व्याख्या केवल इसी प्राकृतिक नियमों द्वारा की जा सकती है। एक बार उन नियमों का निर्माण करने के उपरान्त ईश्वर इनमें कोई संशोधान या परिवर्तन नहीं करता। स्पष्टता इसका अर्थ है कि तटस्थेश्वरवाद इस जगत में उन धार्मिक समत्कारों की संभावना को अश्वीकार करता है, जिनमें अधिकतर धर्म परायण व्यक्ति विश्वास करते है। इस सिद्धान्त के समर्थको का चला है कि धार्मिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ईश्वर स्वयं अपने बनाये हुए प्राकृतिक नियमों का कभी उल्लंघन नहीं करता। ऐसी स्थिति में उस प्रार्थना का भी कोई महत्व नहीं है, जो चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ईश्वर से की जाती है। विश्वसनीय होने के के कारण ईश्वर मनुष्य के लिए पूर्णतः अगम्य है वह अपनी प्रार्थना द्वारा ईश्वर को प्रभावित नहीं कर सकता। इस प्रकार निमित्तेश्ववाद सामान्य अर्थ में प्रार्थना की प्रभावशीलता तथा उपादेयता का भी निषेध करता है।

इस सिद्धांत के अनुसार ईश्वर ने किसी काल विशेष में अपनी इच्छा के अनुसार विश्व की रचना की ईश्वर पूर्ण शाश्वत, असीम सर्वशक्तिमान, सर्वस्व तथा निरपेक्ष व्यक्तित्व पूर्ण सत्ता है। ईश्वर ने विश्व की रचना करके इसे स्वतंत्र छोड़ दिया तथा कभी हस्तक्षेप नहीं करता। ईश्वर ने मनुष्य को संकल्प की स्वतंत्रता प्रदान की है तथा वह शुभ तथा पूर्णता की ओर विकास करने में समर्थ है । केवल निर्मितेश्ववाद या देववाद के अनुसार ईश्वर परम चेतन है ।तथा वह संसार का निमित्त कारण है ईश्वर ने संसार की रचना किसी जड़ पदार्थ से नहीं की है इसलिए इस संसार का कोई उपादान कारण नहीं है। इस सिद्धांत के अनुसार जगत की रचना किसी कल विशेष में हुई है।

केवल निमितेश्वरवाद में सृष्टि को प्रयोजन विहीन नहीं माना गया है अपितु ईश्वर ने जगत की रचना इसलिए की है जिससे कि भिन्न-भिन्न प्राणियों तथा पदार्थों को सुख की प्राप्ति हो इस मत के अंतर्गत ईश्वर को व्यक्तित्व पूर्ण माना गया है। ईश्वर श्रृष्टि में अंतर्यामी नहीं है, वह जगत में व्याप्त नहीं है, ईश्वर विश्वतीत है, वह जगत से परे है। जगत की यांत्रिक व्यवस्था करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार यंत्र कार्य यंत्र की रचना करके उससे अलग है जाता है उसी प्रकार ईश्वर भी सृष्टि की रचना करने के बाद स्वयं तटस्थ हो जाता है। वह जगत की गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करता है वह जगत का रचयिता तो है परंतु पालन करता और संहारकर्ता नहीं है । थॉमस एक्कविनाश का उल्लेख करते हुए हम कर सकते हैं कि ईश्वर अतीत और अज्ञेय है। ऐसा उन्होंने सम्यानुमान सिद्धांत का प्रयोग करते हुए कहा है। ईश्वर के विश्वातीत होने के कारण इसे अनुपस्थित तथा प्रवासी जमीदार Absent landlord की संज्ञा दी गई है ।

ऐसा माना जाता है कि केवल निमितेश्वरवाद की स्थापना सर्वप्रथम अंग्रेज धर्म दार्शनिक हार्बर्ट ऑफ चरबरी ने की जिनका मंतव्य है कि से स्वतंत्र प्राकृतिक धर्म है जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपनी तर्क बुद्धि अथवा प्रकृति प्रदत्त ज्योति द्वारा जान सकता है। उनकी धारणा है कि धर्म तथा नैतिक कर्तव्यों के मध्य अपरिथक संबंध है तथा प्राकृतिक ज्योति के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य अपना धर्म तथा व्यवहारिक जीवन संबंधी कर्तव्य निर्धारित कर सकता है Moral Valves and the idea of God' नामक पुस्तक में सोरले ने सैमुअल क्लार्क के मत का उल्लेख करते हुए केवल निमित्तेश्वर वाद के चार वर्षों का विवरण प्रस्तुत किया-

1. कुछ देववादियों या केवल निमित्तेश्वरवादियों को मान्यता है कि ईश्वर अतीत स्वतन्त्र, शाश्वत तथा सर्वोच्च्या सत्ता है जिसने सृष्टि की रचना की है, परन्तु ये मानते हैं कि ईश्वर सृष्टि के बाद विश्व के पालन तथा संचालन से तटस्थ रहता है।

2. उपरोक्त मान्यता में यह जोड़ते हुए कुछ देववादी कहते है कि ईश्वर कभी - कभी विश्व की कुछ घटनाओं का निरीक्षण करता है तथा ईश्वर कुछ दूर तक विश्व का चालक कहा जा सकता है।

3. उपरोक्त दोनों मान्यताओं के साथ-साथ कुछ देववादी ईश्वर में नैतिक गुणों की पूर्णता का समावेश भी करते हैं। ईश्वर को नैतिक दृष्टि से पूर्ण माना जाता है।

4. कुछ देववादियों की यह भी धारणा है कि ईश्वर के प्रति मनुष्यों का भी कुछ कर्तव्य है तथा ईश्वर उन्हीं कर्मों के अनुसार पुरुकृत या दण्डिता करता है।

उपरोक्त उल्लिखित चार वर्षों में से प्रथम दो को देववाद का प्राकृतिक रूप मान सकते है, परन्तु यह मानना कि ईश्वर प्राकृतिक घटनाओं में हेरफेर करता है, उसकी पूर्णता की धारणा के साथ सुसंगत नहीं है ऐसा मानना ईश्वर को सृष्टिकर्ता के स्थान पर शिल्पकार के रूप में मानना है, जबकि देववाद में यह स्वीकार किया जाता है कि विश्व की रचना के बाद ईश्वर इसमें कोई भी हस्तक्षेप नहीं करता है।

धर्म के क्षेत्र में केवला निमित्तेश्वर वाद के कई उल्लेखनीय योगदान है। इसने प्राकृतिक आत्म ज्योति तथा सहजतर्क बुद्धि को स्वीकार करके श्रृति के नाम पर स्थापित अनेक धार्मिक अन्ध विश्वासों व रुढ़ियों का प्रबल प्रतिवाद किया। इस सिद्धान्त ने तर्कणातीत अथवा अबौद्धिक ईश्वर दर्शन के स्थान पर प्राकृतिक अथवा बुध्दिवरक ईश्वर मीमांसा की स्थापना की। इसी प्रकार केवल निमित्तेश्वरवार का यह प्रयास था कि धर्म तथा विज्ञान के बीच की खाई को जितना कम किया जा सके, वही दर्शन के हित में है। यही कारण है कि इस सिद्धान्त ने यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर विश्वातीत है तथा जगत की प्राकृतिक घटनाओं में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। डा० याकूब मसीह ने लिखा है कि केवल निमित्तेश्वरवाद के अनुसार विश्व की सुबोधता (Intelligibility) तथा तर्क बुद्धिगम्यता (Rationality) वैज्ञानिक अभ्युपगमों (assumptions) को धार्मिक शास्ति (Santicm) तथा समर्थन प्राप्त होता है। इस सिद्धांत द्वारा वैज्ञानिक खोज को पुनीत कर्त्तव्य बनाकर उसके प्रति विशेष उत्प्रेरणा दी जाती है।

केवल निमित्तेश्वरवाद जगत की स्वतन्त्र सत्ता की स्वीकार करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि जड़ पदार्थों को ईश्वर की अपेक्षा नहीं होती है। उनमें प्रचुर भौतिक शक्ति अन्तर्गत है तथा वे स्वतः परिचालित होते रहते है। यह सिध्दान्त घड़ी तथा घड़ी साज की तरह का सम्बन्ध सृष्टि तथा ईश्वर के बीच मानता है। सामान्यतया जगता अपने आप परिचालित होता रहता है, परन्तु जब विश्व में अत्यधिक गड़बड़ी होती है तब ईश्वर विश्व प्रक्रिया में हस्तक्षेप करता है। यह हस्तक्षेप अपवादस्वरूप ही होता है, इसलिए इसे अलौकिक चमत्कार (Supernatural mirade) कहा जाता है।

यह सिद्धीन्त मानव की इच्छा स्वातन्त्रय (Freedom of wil का प्रतिपादन करता है। मनुष्य को आशावाद की भावना से ओत पोत माना जाता है। वह अपनी इच्छानुसार कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों के कारण स्वभाव से ही नित्यता पूर्णता एवं अनन्तता की कामना करता है। ईश्वर ने मनुष्य को प्राकृतिक ज्योति प्रदान की है जो मनुष्य को उसके नैतिक कर्तव्य का ज्ञान कराती है। मनुष्य स्वभावतः शुभ है परन्तु संयोग वश किसी अशुभ सत्ता से प्रभावित होकर कार्य करता है।

7.3 केवल निमित्तेश्वरवाद (देववाद) की आलोचना

1. इस सिद्धांत के अनुसार ईश्वर ने शून्य से विश्व की रचना की जबकि ऐसा मानना सुसंगति पूर्ण नहीं लगता। शून्य के द्वारा नाना प्रपंचात्मक भेदयुक्त तथा विविधताओं से सम्प्रक्त विश्व की रचना संभव नहीं प्रतीत होती है। ऐसा माना जाता है कि शून्य से शून्य की ही उत्पत्ति होती है। जिस वस्तु का अभाव है उसका भाव संभव नहीं है।

गीता में कहा गया है - ***नासतो विद्यते भावो ना भावों विद्यते सतः***

2. देववाद में यह प्रतिपादित किया गया है कि ईश्वर काल विशेष में जगत की रचना करता है परन्तु प्रश्न यह उठाया गया है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना उससे पहले क्यों नहीं की ? या सृष्टि की रचना क्यों की ? यदि किसी विशेष कारण वश या विवशतावश ईश्वर सृष्टि की रचना करता है तो क्या ऐसे ईश्वर को पूर्ण ईश्वर माना जा सकता है। यदि उसमें अभाव तथा आवश्यकता है तो क्यों ऐसे ईश्वर को पूर्ण ईश्वर माना जा सकता है यदि उसमें ही अभाव तथा आवश्यकता है तो क्या उसकी पूर्णता असिद्ध नहीं हो जाती है ? देववादियों के पास इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नही है।

3. देववाद में ईश्वर तथा विश्व के मध्य उसी प्रकार का सम्बन्ध माना गया है, जैसा सम्बन्ध घड़ी साज तथा बड़ी के बीच होता है या किसी यंत्रकार और मशीन के बीच इस सिद्धांत के अंतर्गत ईश्वर की कल्पना मानवीय रूप में की गई है। इसलिए समीक्षकों की दृष्टि में यह सिद्धांत ईश्वर मानवीकरण के द्वेष से ग्रसित हो जाता है।

4. केवल नितेश्वरवाद में सृष्टि को ईश्वर की सर्वोत्तम कृति माना जाता है तथा सृष्टि का प्रयोजन सांसारिक प्राणियों को सुख प्रदान करना है। परंतु प्रश्न या उठना है कि संसार में अशुभ, दुख ,सुख आदि क्यों है? अशुभ की उत्पत्ति किसने की? इस समस्या के समाधान के लिए केवल नितेश्वरवादियों ने युक्ति प्रदान करते हुए कहा है कि नैतिक विकास के लिए दुख ,दैत्य ,पाप तथा असुभ का होना परम आवश्यक है। इसी प्रकार कुछ विचारको के अनुसार मानव की इच्छा की स्वतंत्रता के दुरुपयोग के कारण संसार में अशुभ तथा दुख है लेकिन उल्लेखनीय है कि अनेक ऐसी प्राकृतिक अशुभ घटनाएं होती है जिसका कारण मानवीय कर्म नहीं माना जा सकता है कुछ देववादियो ने अशुभ की समस्या के समाधान का प्रयास करते हुए कहा है कि इस संसार में अशुभ वस्तुतःहै ही नहीं यह भ्रममात्र ही यह प्रतीत मात्र है ,लेकिन अशुभ को यथार्थ तथा भ्रामक मानना ना तो उपयुक्त है तथा नही समाचीन।

मनुष्य जिस प्रकार शुभ का अनुभव करता है उसी प्रकार अशुभ का भी अनुभव करता है इसलिए यदि शुभ के अस्तित्व को स्वीकार किया जा सकता है तो अशुभ को अपर्याय कैसे माना जा सकता है अशुभ या बुराई एक व्यवहारिक यथार्थ वास्तविक तथा कठोर अनुभूति है जिसका खंडन नहीं किया जा सकता है।

5. देववादियों ने ईश्वर को विश्वतीत विश्व से परे तथा तटस्थ माना है जो सृष्टि की रचना के बाद जगत से अपना संबंध विच्छेद कर लेता है। इसके बाद ईश्वर की शक्तियां विश्व का संचालन करती है परंतु यहां समस्या यह उठती है कि ईश्वर की शक्तियां ईश्वर से अलग कैसे रहती है? यदि ईश्वर की शक्तियां विश्व में विद्यमान है तो ईश्वर को विश्व से स्वतंत्र तथा परे नहीं माना जा सकता।

6. यह सिद्धांत ईश्वर के संबंध में अपनी धारणा को स्थापना वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करने का प्रयास करता है जिससे कि धर्म तथा विज्ञान के अंतरविरोध को समाप्त किया जा सके परंतु ऐसा प्रयास करते समय इस सिद्धांत का दार्शनिक पक्ष कमजोर हो जाता है। उदाहरण के लिए केवल नितेश्वरवाद की मान्यता कि ईश्वर बुद्धि द्वारा ज्ञेय है युक्ति पूर्ण नहीं लगता। धर्म के अंतर्गत ईश्वर का ज्ञान रहस्यात्मक अनुभूति तथा अंतर्ज्ञान या अपरोक्षानुभूति का विषय है। रहस्यात्मकता को धर्म का प्राण माना जाता है अतः ईश्वर को बुद्धिगम्य मनाना असंगत अमान्य तथा भ्रामक है। इस सिद्धांत को धार्मिक भावना को संतुष्ट करने वाला नहीं माना जा सकता है। ईश्वर को कभी भी पूरी तरह मानव बुद्धि समझ नहीं सकती।

7. क्या केवल निमितेश्वरवाद का ईश्वर धार्मिक भावना की संतुष्टि कर सकता है ? इस सिद्धांत में ईश्वर को विश्वातित ,तटस्थ एवं विश्व से परे मानना जाता है परंतु उल्लेखनीय है कि इस प्रकार का ईश्वर धार्मिक दृष्टि से संतोष

जनक नहीं माना जाता है। धर्म भावना प्रधान है तथा भक्त ईश्वर का समीपता चाहता है परंतु विश्व से परे होने के कारण ईश्वर भक्ति की पहुंच से बाहर है इसलिए धर्म में ईश्वर को सर्वव्यापी तथा विश्व में व्याप्त माना जाता है

8. केवल नितेश्वरवाद में ईश्वर को सृष्टि कर्ता तो माना जा सकता है परंतु उसे पालन करता एवं संहारकर्ता नहीं माना जाता है धर्म में भक्त ऐसी ईश्वर की उपासना करता है जो समस्त गुणों से युक्त है जो प्रेम, दया, क्षमा आदि गुणों से विभूति है इसलिए यह सिद्धांत ईश्वर के इन गुणों का खंडन करके धार्मिक भावना को ठेस पहुंचती है। यही कारण है कि गैलवे ने इसे एक आलोचनात्मक क्रांति माना है, आध्यात्मिक नहीं।

इस विषय में यह भी कहा जाता है कि निमित्तेश्वरवाद में वैज्ञानिकता को स्थान देने के लिए ईश्वर में धार्मिकता को बाली दे दो इसमें ना तो धार्मिक प्रार्थना उपासना का महत्व रह जाता है ना ही धार्मिक रहस्यानुभूति का गौरव। पैट्रिक हैक के शब्दों में नितेश्वरवाद के ईश्वर के हाथ दुनिया बनना तो जानते हैं मगर उसे संभालना नहीं चाहते। वह दिमाग वाला ईश्वर तो है मगर दिलवाला नहीं ।

7.4 निष्कर्ष:-

स्पष्ट है कि देववाद धार्मिक दृष्टिकोण से ईश्वर एवं जगत के संबंध की संतोषजनक व्याख्या नहीं कर पता तथा बुद्धिजीवी विचारको के लिए यह व्याख्या महत्वपूर्ण रही है देववाद ने रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वासों का खंडन कर मनुष्य को इस जगत की समस्याओं पर तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

...................00..................

इकाई–8 सर्वेश्वरवाद

8.0 उद्देश्य:-

8.1 प्रस्तावना:-

8.2 विशेषताए:-

8.3 सर्वेश्वरवाद के प्रकार Forms of Pantheism

8.3.1 परम्परावादी (Traditional)

8.3.2 प्रत्ययवादी (Idealistic)

8.3.3 विकासवादी (Evolutionary)

8.3 4 जड़वादी (materialistic) (भौतिकवादी)

8.4 निष्कर्ष:-

---------------00--------------

8.0 उद्देश्य:-

प्रस्तुत ईकाई ईश्वर के जगत के साथ सम्बन्ध की दिशा में सर्वेश्वरवाद अर्थात सब कुछ ईश्वर है। की विस्तृत विवेचना करती है। सर्वे सर्वेश्वरवाद के बारे में विभिन्न पाश्चात्य तथा भारतीय विचारकों से मिले विवरणों का भी उल्लेख किया गया है इसके साथ ही सर्वेश्वरवाद के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए समीक्षात्मक मूल्यांकन भी किया गया है।

8.1 प्रस्तावना:-

पाश्चात्य तथा भारतीय चिंतन में ईश्वरवादी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने के साथ ही इसे विश्व या जगत का आदि कारण मानते है। उनके अनुसार इस विश्व का अस्तित्व पूर्णतः ईश्वर पर निर्भर है क्योंकि ईश्वर ने ही इस जगत की रचना की है तथा वही उसका एक मात्र मूल आधार है। इस सन्दर्भ में जगत के साथ ईश्वर के सम्बन्ध की व्याख्याएं भी मिलती है, जिन्हे मुख्यतः ईश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद एवं देववाद में वर्गीकृत किया जाता है।

ईश्वर एवं जगत के सम्बन्ध में सर्वेश्वरवाद पूर्ण तादात्म्य में विश्वास करता है अर्थात् ईश्वर तथा जगत दोनों अभिन्न है। ईश्वर जगत के कण-कण में व्याप्त है, अतः इन दोनों की भिन्नता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जगत की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें ईश्वर विद्यमान न हो। जगत मूलतः ईश्वर का ही रूप है ईश्वर ही अपने आप को इस जगत को विभिन्न वस्तुओं में अभिव्यक्त करता है।

अर्थः सर्वेश्वर वाद शब्द - सर्व + ईश्वर ' इन दो शब्दों से मिलकर बना है इस प्रकार शब्दशः इससे यह उपलक्षित होता है कि वह धार्मिक सिद्धांत जिसके अनुसार ईश्वर ही सब कुछ है। निम्नलिखित उदाहरण इसी प्रकार के धार्मिक सिद्धान्त को घोषित करता है। - ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । अर्थात जो कुछ इस जगत में है वह सब ईश्वर से ही संभव है। इस सिद्धांत के अनुसार ईश्वर परमार्थिक सत्ता है जो अनन्त अनादि तथा सर्व व्यापी है। सर्वेश्वरवाद का अंग्रेजी समानार्थी शब्द Pantheism है जो 'Pan' तथा "Theos' इन दो शब्दों से व्युत्पन्न हुआ है जिनका क्रमशः अर्थ है all अर्थात, सब, तथा God अर्थात् ईश्वर अर्थात- 'All is God.'

सर्वेश्वरवाद का अर्थ है- सबकुछ ईश्वर है। ऐसा कहा जाता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर ही सब कुछ है तथा सब कुछ ईश्वर है। इस सिद्धान्त में ईश्वर तथा विश्व को समानार्थक मान लिया जाता है।

प्रो. फ्लिन्ट ने सर्वेश्वरवाद को निम्नवत पारिभाषित किया है - सर्वेश्वरवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके अनुसार सभी ससीम वस्तुएं एक ही शाश्वत परमसत्ता के मात्र -पहलू विकार या अवयव है। इस सिद्धान्त के अनुसार समी भौतिक पदार्थ एवं मन विशेष आवश्यक रुप में एक असीम द्रव्य से उद्भव हुए है। यह एक निरपेक्ष द्रव्य सर्वपक्षती सत्ता को ईश्वर की संज्ञा देता है।

8.2 विशेषताएः-

उस सिद्धांत के अनुसार सान्त तथा सीमित अन्रत तथा असीमित की अभिव्यक्ति है। अचेतन चेतन का ही प्रकार है। सम्पूर्ण सत्ता में नित्य तथा अनित्य सान्त तथा अनन्त, सीमित तथा असीमित, चेतन व अचेतन सभी समाहित तथा अन्तर्निहित है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि ईश्वर विश्व में अन्तत्यप्ति है तथा विश्व भी सम्पूर्ण ईश्वर में सन्निहित है। ईश्वर अपरिणामी है, नित्य, शाश्वत । अनादि, अनन्त तथा निरपेक्ष है।

सर्वेश्वरवाद के अन्तर्गत ईश्वर तथा विश्व के बीच अभिन्न तथा अपृथक सम्बम्ध है। सृष्टा तथा सृष्टि ये अविच्छेद सम्बन्ध है। ईश्वर विश्व के कण - कण में व्याप्त है तथा विश्व पूर्णतया ईश्वर पर आधारित है। इस मत के प्रवर्तक ईश्वर को जगत की आत्मा तथा जगत को ईश्वर की आत्मा तथा जगत को ईश्वर का शरीर मानते है। ईश्वर ही विश्व का कारण है तथा विश्व ईश्वर का कार्य या परिणाम है। कारण तथा कार्य में जिस प्रकार अपरिहार्य सम्बन्ध पाया जाता है उसी प्रकार ईश्वर तथा विश्व में भी अपृथक सम्बाध है। ईश्वर विश्वमय है तथा विश्व ईश्वरमय है।

सर्वेश्वरवाद ईश्वर तथा विश्व दोनो को एक दूसरे के लिए अनिवार्य मानता है। विश्व को ईश्वर के लिए इसलिए अनिवार्य माना जाता है क्योंकि ईश्वर विश्व के माध्यम से ही स्वयं को अभिव्यक्त करता है प्रकट करता है। उसी प्रकार विश्व के लिए ईश्वर इसलिए अनिवार्य है क्योंकि जिस प्रकार कारण के बिना कार्य की सत्ता असंभव है उसी प्रकार ईश्वर के बिना विश्व के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। विश्व ईश्वर स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

सृष्टि के बिना सृष्टा की सार्थकता नही है, ईश्वर तथा विश्व अनादि काल से अनिवार्य रुप से सम्बध्द है। ईश्वर ने किसी काल विशेष में जगत की रचना नहीं की है। दोनो का सम्बन्ध काल सापेक्ष न होकर काल निरपेक्ष है। यहमत केवल निमित्तेश्वरवाद के विरुध्द है,क्योंकि देववाद में माना गया है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना किसी काल विशेष में की।इस सिध्दान्त में ईश्वर तथा विश्व के बीच कालिक सम्बन्ध माना गया है,परन्तु सर्वेश्वरवाद ईश्वर तथा विश्व के मध्य अनादि,नित्य तथा शाश्वत सम्बन्ध मानता है।

सर्वेश्वरवाद में ईश्वर को निराकार,अमूर्त तथआ व्यक्तित्व रहित माना गया है। निरपेक्ष ईश्वर में इच्छा संकल्प आदि का पूर्ण अभाव होता है। निराकर निरपेक्ष ईश्वर ही अनन्त तथा असीमित ईश्वर होता है। यह सिध्दान्त ईश्वर वाद तथा देववाद

के निपरीत है क्योंकि वे ईश्वर को सगुण तथा व्यक्तित्वपूर्ण मानते है। ईश्वर दया,करुणा,क्षमा आदि गुणों से परे है। ईश्वर को सगुण तथा साकार मानने से आश्वर अपने गुणों से सापेक्ष तथा सीमित हो जाता है। अतः निरपेक्ष ईश्वर का निराक तथआ व्यक्तित्व रहित होना अनिवार्य है।

सर्वेश्वरवाद में ईश्वर को विश्व का उपादान कारण माना जाता है। उपादान कारण को कार्य से पृथक नहीं किया जा सकता है जैसे मिट्टी घड़े का उपादान कारण है तथा मिट्टी को घड़े से पृथक नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार ईश्वर विश्व का उपादान कारण है तथा उसे विश्व से प्रथक नहीं किया जा सकता है। ईश्वर को विश्व से स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता है। ईश्वर तथा विश्व के मध्य अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

सर्वेश्वरवाद विश्व को निष्प्रयोजन था उद्देश्यरहित मानता है। विश्व की रचना के पीछे कोई प्रयोजन या उद्देश्य निहित नहीं है। ईश्वर किसी भी कमी की पूर्ति के लिए या किसी भी इच्छा को पूर्ति के लिए जगत की रचना नहीं करता है। विश्व ईश्वर की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है वह विश्व के रूप में अपने को प्रकाशित करता है तथा यह आत्म प्रकाशन ईश्वर की प्रकृति है। प्रो. विलन्ट का मन्तव्य है कि सर्वेश्वरवाद में एकवाद (Monism) तथा नियतिवाद (Determinism) दोनों निहित है। सर्वेश्वरवाद एकवाद का प्रतिवादन करता है यह एक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है। -

8.3 सर्वेश्वरवाद के प्रकार Forms of Pantheism

- परम्परावादी (Traditional)
- प्रत्ययवादी (Idealistic)
- विकासवादी (Evolutionary)
- जड़वादी (materialistic) (भौतिकवादी)

8.3.1. परम्परावादी सर्वेश्वरवाद

सर्वेश्वरवाद का प्राचीनतम रूप को परम्परागत सर्वेश्वरवाद कहा जाता है। इस सिद्धात के अनुसार- ईशर को निर्गुण, निराकार, तथा निवैयक्तिक माना जाना है। सम्पूर्ण विश्व को ईश्वर का रूप माना जाता है। पाश्चात्य दार्शनिकों में इस प्रकार का सर्वेश्वरवाद महान बुद्धिवादी यहूदी दार्शनिक स्पिनोजा के दर्शन में देखा जा सकता है। स्पिनोजा ने ईसाई धर्म में प्रतिपादित ईश्वर के स्वारूप को स्वीकार नहीं किया तथा ईश्वर में असीम, अनन्त निराकार, निर्विशेष, निर्गुण तथा निरपेक्ष सत्ता के रूप में स्वीकार किया। स्पिनोजा ने ईश्वर को स्वतन्त्र, शाश्वत तथा स्वयं भू द्रव्य की संज्ञा दी। ईश्वर को किसी अन्य सत्ता की अपेक्षा नहीं है, वह पूर्णतया निरपेक्ष तथा निराधार होने के कारण - अनिर्वचनीय है। स्पिनोजा ने ईश्वर तथा विश्व को भिन्न माना है। स्थैनिक तथा

स्थैनिक तथा अचल रूप में स्पिनोजा ने यह प्रतिपादित किया कि समस्त प्रातिभासिक जगत को सम्पूर्ण समष्टि ईश्वर है (Nature Naturata) या ईश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का गतिशील प्राण (Nature Naturons) है। स्पिनोजा ने अपने दरर्शन में ईश्वर तथा विश्व को समानार्थक माना है। ईश्वर ही विश्व है तथा विश्व ही ईश्वर है ईश्वर विश्व के कण- कण में व्याप्त है। स्पिनोजा का निवैयक्तिक तथा निराकार ईश्वर धर्म की दृष्टि से उपादेय नहीं है। इस प्रकार का ईश्वर बौध्दिक प्रेम (Intellectu Love) का विषय है धार्मिक भावना का नहीं।

8.3.2. प्रत्ययवादी सर्वेश्वरवाद

प्रसिद्ध पाश्चात्य धर्म दार्शनिक फेकनर द्वारा प्रतिपादित प्रत्ययवादी सर्वेश्वरवाद के अन्तर्गत ईश्वर को आत्मा तथा विश्व को शरीर माना गया है। मानव- संस्चना को दृष्टिगत रखते हुए फेकनर ने ईश्वर को विश्व की आत्मा के रूप में निरूपित किया तथा विश्व को ईश्वर की शरीर के रूप में प्रतिपादित किया है। ऐसी मान्यता है कि फेकनर ने ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण माना है जो कि अचेतन जगत का नियंत्रक है। ईश्वर को इस मत के अनुसार भी समष्टि रूप में माना गया है।

इस सिद्धात को सर्वेश्वरवाद के अन्तर्गत इसलिए रखा है क्योंकि यहाँ यह स्वीकार किया गया है कि विश्वईश्वर मे पूर्णतया समाहित हो जाता है तथा विश्व का कोई भी अंश ईश्वर से अलग नहीं रहता है। ' A Pluralistic Universe' नामक पुस्तक में विलियम जेम्स ने फेकनर के विचारों का प्रस्तुतीकरण किया है तथा यह प्रदर्शित किया है कि उनके अनुसार ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है।

8.3.3. विकासात्मक सर्वेश्वरवाद

विकासात्मक सर्वेश्वरवाद का समर्थन एवं प्रतिपादन करने वाले प्रमुख दार्शनिकों ने हीगेले, ब्रेडले तथा बोसांके के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस सिद्धान्त से मान्यता है कि परमसत्ता अनेक संभावनाओं से परिपूर्ण है। विकास की प्रक्रिया में ये संभावनाएं क्रमशः वास्तविकता में परिणत होती जाती है। इस विकासक्रम में सर्व प्रथम् भौतिक पदार्थ का विकास होता है तथा इसके उपरान्त जीवित या चेतन तत्वों तथा चेतन जीवों का विकास होता है। इसमें ईश्वर सर्वोच्च्य सत्ता है जो पूर्ण है तथा विकासक्रम का घरत्मतम शिखर है इस प्रकार विकासवादियों ने संभावना से वास्तविकता का विकासक्रम का सम्यक रूपेण निरूपण किया है।

8.3.4. मौतिकवादी सर्वेश्वरवाद

इस सिद्धान्त को प्राय: विकासात्मक सर्वेश्वरवाद का विरोधी सिद्धान्त माने जाने की परम्परा रही है। इस सिद्धात के प्रतिपादक ने विश्व में व्याप्त एकरूपता को व्याख्या भौतिक पदार्थों के माध्यम से करने का प्रयास किया है। परन्तु वास्तव में देखा जाय कि तो जड़वादी मान्यता सर्वेश्वरवाद के सिद्धान्तों से सुसंगत नहीं है तथा धर्म के क्षेत्र में इस प्रकार की धारणा बहुत सम्मानजनक स्थान कभी भी ग्रहण नहीं कर पायी है। विकासात्मक सर्वेश्वरवाद के विपरीत यह सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि परमसत्ता समष्टि रूप तथा पूर्ण है तथा विकास पूर्ण से अपूर्ण की ओर होता है।

भारतीय दर्शन में सर्वेश्वरवाद :-

सर्वेश्वरवाद की परम्परा भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों चिंतन में मिली है। भारतीय परम्परा में उपनिषद, गीता। शंकराचार्य आदि के चितंन में सर्वेश्वरवाद अभिव्यक्त होता है। ईशावास्योपनिषद कहा गया है - ईसावास्थनि सर्व यत्किंचत जगत्यो जगत्' अर्थात् जो कुछ जगत में है। वह ईश्वर में ही भगवद्गीता में कहा गया है कि जो मुझे सर्वत्र देखता है वह मुझमें सबको देखता है मैं उसके लिए कभी नहीं सोता न ही वह मेरे लिए।

यो मा पश्यति सर्वत्र सर्व चर्माय पश्यति| तस्पाहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति

अद्वैत वेदान्ती शंकराचार्य सम्पूर्ण सत्ता को ब्रह्मय मानते है साथ ही पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म जगत तथा जबि को अभिन्न मानते है-

"ब्रह्म' सत्य जगतमिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नायर "

आलोचना:-

1. सर्वेश्वरवाद धार्मिक दृष्टिकोण से संतोषजनक नहीं है ईश्वरोपासना के लिए ईश्वर तथा भक्त में भेद होना अनिवार्य है, यदि ईश्वर तथा भक्त एक ही है तो भक्त द्वारा ईश्वर की उपासना करने का प्रश्न ही नही उठना क्योंकि ऐसी स्थिति में भक्त या ईश्वर स्वंय अपने ही उपासना करेगा। पुनः धार्मिक मनोवृत्ति की सन्तुष्टि हेतु ईश्वर की व्यक्तित्वपूर्णत आवश्यक है। जबकि सर्वेश्वरवाद ईश्वर को व्यक्तित्व शून्य मानता है। धार्मिक व्यक्ति ईश्वर से प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, प्रार्थना आदि की अपेक्षा रखता है जो कि निवैयक्तिकता में संभव नहीं है।

2.सर्वेश्वरवादी ईश्वर तथा मनुष्य को एक स्थिति में ला देते हैं। यह जगत तथा मनुष्य सीमित तथा अपूर्ण है जिससे ईश्वर भी सीमित एवं अपूर्ण हो जाता है। पुनः ईश्वर जगत को निकृष्टतम वस्तुओं में भी विद्यमान हो जाता है, जोकि धार्मिक के लिए ठीक नहीं है।

एक अन्य दृष्टिकोण से यदि ईश्वर पत्थर में इसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार मनुष्य में है। इस स्थिति में दोनो का आधार भूत अन्तर समाप्त हो जायेगा, जबकि चेतना कि स्तर पर दोनों में पर्याप्त अन्तर है जिससे मनुष्य ही ईश्वरवेपासना कर पाता है।

3.सर्वेश्वरवाद मानवीय संकल्प स्वतन्त्र तथा नैतिक मूल्यों का निषेध करता है। सर्वेश्वरवाद के लिए मनुष्य का ईश्वर से भिन्न एवं संकल्प की स्वतन्त्रता के लिए मनुष्य का ईश्वर से भिन्न एवं स्वतन्त्रता के लिए मनुष्य का ईश्वर से भिन्न एवं स्वतन्त्र होना आवश्यक है जिसका सर्वेश्वरवाद में कोई स्थान नहीं है। यदि संकल्प स्वातन्त्रय नहीं है, तो पाप-पुण्य, धर्म -अधर्म का उत्तरदायित्व मनुष्य पर लागू नहीं हो सकता।

4. सर्वश्वरवाद के अनुसार यह जगत ही ईश्वर है, जिससे निर्यातवाद सिद्धान्त का समर्थन होता है अर्थात् पूर्व निर्धारित नियमों के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि एवं ईश्वर संचालित है जिसमें जगत की विविधता की व्याख्या संभव नहीं हो सकती तथा प्रकृति के यान्त्रिक विवयों की भांति मनुष्य भी यान्त्रिक नियमों से संचालित माना जायेगा, जिसमें निराशावादी प्रवृत्ति उत्पत्ति होना स्वाभाविक है।

सर्वेश्वरवाद का एक अन्य कमजोर पक्ष यह है कि उस सिद्धान्त के अन्तर्गत सृष्टि को प्रयो जनहीन माना गया है। इसकी मान्यता है कि ईश्वर स्वयं विश्व के रूप में अपने को अभिव्यक्त करता है, परन्तु यदि हम वास्तविक दृष्टिकोण से देखे तो विश्व की प्रत्येक घटना में क्रमबद्धता तथा तारतम्यता देखा जा सकता है। सर्वेश्वरवाद विश्व को प्रयोजनहीन मानकर उस क्रमबद्धता, सुसंगति एवं व्यवस्था की समुचित व्याख्या नही कर पाता है।

8.4 निष्कर्ष:-

उपरोक्त कमियों, विसंगतियों एवं दोषों को देखते हुए यह नहीं मान लेना चाहिए कि सर्वेश्वरवाद का कोई मूल्य नहीं है तथा यह पूर्णतया अमान्य, असंगत एवं अस्वीकार्य है। भावनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो हम इसकी कई उल्लेखनीय विशेषताओं का निरुपण करते हैं। वास्तव में सर्वेश्वरवाद के अन्तर्गत रहस्यवाद की पराकाष्ठा व्याधित होती है। सर्वेश्वरवाद के सिद्धान्त नैतिक आचरण के उन्नयन तथा विषमता की भावना के परित्याग को प्रोत्साहित करता है। अन्तता यह स्वीकार करना गलत न होगा कि यह ईश्वर को एकमात्र परमसत्ता मानकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एकता से सम्बन्धित मनुष्य की आकांक्षा को पूर्ति करता है साथ ही रहस्यवाद के साथ संयुक्त होकर धार्मिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

इकाई–9 ईश्वरवाद

ईश्वरवाद (Theism)

पाश्चात्य तथा भारतीय चिंतन में समस्त ईश्वरवादी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने के साथ ही इसे विश्व या जगत का आदि कारण मानते हैं उनके अनुसार इस विश्व का अस्तित्व पूर्णतः ईश्वर पर निर्भर है।

ईश्वर और जगत के सम्बन्ध में ईश्वरवाद एक लोकप्रिय अवधारणा है जिसमें ईश्वर अनन्त और व्यक्तित्वपूर्ण है साथ ही सृष्टिकर्ता एवम् पालनकर्ता है विश्व का अस्तित्व पूर्णतया ईश्वर पर ही निर्भर है। विश्व में ईश्वर व्याप्त भी है और उससे परे भी हे अर्थात ईश्वर विश्वातीत और अंतर्वर्ती दोनों है। ईश्वरवादी अपने परमतत्व को जगत में पूर्णतया व्याप्त मानने के साथ ही विश्व से अलग भी मानते हैं। उल्लेखनीय है कि ईश्वरवाद का शाब्दिक अर्थ होता है वह मत जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करे किन्तु यहां पर इस शब्द की चर्चा विशिष्ट अर्थ में होती है जिसके अन्तर्गत व्यतित्वपूर्ण ईश्वर जगत का निमित्त एवं उपादान कारण है साथ ही विश्व व्यापी तथा विश्वातीत है।

जगत से सम्बन्धित ईश्वरवादी अवधारणा समस्त ईश्वरवादी धर्मों में मिलती है जिनका ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण है सामान्यतः ज्ञानात्मक भावात्मक एवम् क्रियात्मक प्रक्रियायें व्यक्ति के मानसिक पक्ष की ओर संकेत करती हैं वही क्रियात्मक प्रक्रियायें व्यक्ति के शारीरिक पक्ष को उद्घाटित करती हैं इसलिए व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर में तत्वमीमांसीय एवं नैतिक गुणों का समोवेश होता है तत्व मीमांसी दृष्टि से ईश्वर को सर्वशक्तिशाली सर्वव्यापक सर्वज्ञ, सास्वत् एवम् अनन्त आदि गुणों से युक्त माना जाता है।

ईश्वरवाद में परमतत्व सम्पूर्ण कार्य को करने की क्षमता होती है साथ ही वह समस्त सत्ता में विद्यमान होता है इस समस्त वस्तुओं प्राणियों स्थानों एवम् तीनों कालों में होने वाली घटनाओं का ज्ञान होता है ईश्वर शाश्वत अनादि एवम् कालातीत है जिससे असीमितता या अनन्तता का गुण भी विद्यमान हो जाता है। इस तत्व मीमांसी गुणों के अतिरिक्त ईश्वर में कुछ नैतिक गुणों का भी समावेश किया जाता है। नैतिक गुण वह है जो मनुष्य के अनुभव का भी समावेश किया जाता है। नैतिकगुण वह है जो मनुष्य के अनुभव द्वारा श्रेष्ठतर एवं वांछनीय माने जाते हैं। जैसे ईश्वर का पूर्ण शुभत्व होना, प्रेम, करुणा, न्यायशीलता आदि से युक्त होना।

ईश्वरवाद का समर्थन भारतीय एवम् पाश्चात्य दोनों चिन्तनों में मिलता है। भारतीय परम्परा में मुख्यतः वैष्णव वेदान्ती रामानुज बल्लभाचार्य माधवाचार्य इसका समर्थन करते हैं साथ ही वेद, उपनिषद तथा गीता में भी ईश्वरवाद पर प्रकाश पड़ता है। रामानुज के विशिष्टाद्वैत में ब्रह्म, जगत एवम् आत्मा की वास्तविक सत्ता स्वीकार की गई है ईश्वर का अंश जगत है जगत विशेषण है ईश्वर विशेष है साथ ईश्वर जगत की अंतर्यामी आत्मा है अर्थात् जगत में व्याप्त है। ईश्वर ही कार्य रूप में जगत में परिवर्तित है।

जगत में व्याप्त होने तक ही रामानुज का ईश्वर सीमित नहीं है बल्कि वह जगत से परे भी है। इस संदर्भ में रामानुज अंतर्यामी, नारायण, व्यूह, विभव एवम् अर्चावतार आते हैं। जिसमें अंतर्यामी, व्यूह, विभव एवम् अर्चावतार की अवधारणा में ईश्वर जगत में निहित रहता है जबकि 'नारायण' में देश काल की सीमा

से परे भगवान वैकुंठ लोक में लक्ष्मी के साथ शेषनाग पर विद्यमान हैं। रामानुज का ईश्वर जगत का निमित्त कारण होने के साथ ही ऐश्वर्य, यश, धर्म, श्री, ज्ञान एवम् वैराग्य से युक्त है और जगत का पालन कर्ता व संहारक भी है।

ईश्वरवाद का समर्थन ईसाई धर्म में भी मिलता है साथ ही एक्विनास, अगस्टाइन आदि मध्ययुगीन विचारकों ने भी ईसाई धर्म के आधार पर ईश्वरवाद की व्याख्या की है। आधुनिक चिंतन में गैल्वे भी ईश्वरवाद के समर्थन में कहते हैं कि यदि व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर को नही माना जाए तो सम्पूर्ण मानव–चेतना का विकास, भ्रमात्मक हो जाएगा। स्पष्ट है कि ईश्वरवादी अवधारणा मनुष्य की स्वाभाविक जिज्ञासाओं एवम् धार्मिकता को संतुष्ट करती है। गैल्वे यहां तक कहते हैं कि व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर के अभाव में हमारी धार्मिक अनुभूति सत्य नहीं मानी जा सकती।

ईश्वरवाद मानव को संकल्प की स्वतंत्रता से युक्त रखता है। वह मानव के कर्मों में बाधक नहीं होता इसलिए ईश्वरवाद के साथ कर्म सिद्धांत का समर्थन मिलता है मनुष्य जैसा कर्म करता है उसके अनुसार इसे फल की प्राप्ति अवश्य होती है। जिससे ईश्वर न्यायाधीश की भूमिका निभाता है। अर्थात् मनुष्य कर्मों के आधार पर जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है साथ ही व्यक्तित्व पूर्ण ईश्वर उसकी पुकार एवम् कर्मों पर ध्यान देकर उसका कल्याण करने की क्षमता भी रखता है जिससे मनुष्य में आशा का संचार होना स्वाभाविक है।

ईश्वरवाद का समर्थन प्रायः सभी ईश्वरवादी धर्मों में मिलता है जिससे इसकी लोक प्रियता सर्वाधि मानी जाती है। विश्वव्यापी होने के नाते वह मनुष्य के निकट भी है और विश्वातीत होने के कारण दूर भी है। अतः उपासक और उपास्य में दूरी भी बनी हुई है। जो धर्म के लिए आवश्यक है ईश्वर के प्रति भय, श्रद्धा तथा प्रेम की चेतना व्यक्तित्व के कारण बनी रहती है क्योंकि ईश्वरवाद में मानव चेतना तथा ईश्वर चेतना को समता प्रदान की गई है। इसलिए कहा जाता है कि ईश्वरवाद का जन्म मनुष्य की धार्मिक आकांक्षा की पूर्ति और संतुष्टि के लिए हुआ है।

ईश्वरवाद, द्वैतवाद एवम् सर्वेश्ववाद दोनों सिद्धांतों की कुछ विशेषताओं को स्वीकार करने के साथ ही कुछ नये चिंतन को सम्मिलित करता है यद्यपि द्वैतवाद एवम् ईश्वरवाद दोनों ही ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण मानते हैं किन्तु यहां एक ओर द्वैतवाद में विश्वातीत ईश्वर विश्व का केवल निमित्त कारण है वहीं ईश्वरवाद में विश्वव्यापी व विश्वातीत ईश्वर विश्व का निमित्त तथा उपादान तथा उपादान दोनों है। पुनः ईश्वरवाद से अलग सर्वेश्वरवादी ईश्वर को विश्वव्यापी एवम् व्यक्तित्व शून्य मानते हैं।

उपर्युक्त तुलना पर गैल्वे का मत है कि द्वैतवाद के इस मत को ईश्वरवादी अस्वीकार करते हैं कि जगत ईश्वर से स्वतंत्र है। पुनः सर्वेश्ववाद में सुधार करते हुए ईश्वरवादी 'सब कुछ ईश्वर है' से बजाए "सब कुछ ईश्वर पर निर्भर है" को स्वीकार्य करते हैं जिससे धार्मिक अनुभव के मानवीय तथा ईश्वरीय पक्षों की समुचित मान्यता प्राप्त हो जाती है।

आलोचना – 1. ईश्वरवाद, द्वैतवाद सर्वेश्वरवाद की कठिनाई को दूर करने के प्रयास में स्वयं विसंगतियों से युक्त हो जाता है। यदि ईश्वर वास्तव में विश्वातीत है तो वह विश्वव्यापी नहीं हो सकता और यदि विश्वव्यापी है तो उसे विश्वातीत नहीं माना जा सकता। किन्तु ईश्वरवादी दोनों परस्पर विरोधी मान्यताओं को एक साथ स्वीकार्य कर लेतें हैं।

2. ईश्वरवाद में व्यक्तित्वपूर्ण विरोधाभासों को जन्म देती है यदि ईश्वर एक ओर सर्वशक्तिमान है तो दूसरी और सृष्टि निर्माण में नियम प्रवर्तन भी करता है अतः कोई भी सर्वशक्तिमान सत्ता जैसे ही नियम देती तो वह नियमों में बंधने के कारण सीमित हो जाएगी। मैकी मानते हैं कि यदि सर्वशक्तिमान ईश्वर स्वयं बनाये नियमों से नियन्त्रित नहीं होता तो इससे भी उसकी सर्वशक्तिमत्ता खंडित होती है।

3. पुनः ईश्वर नित्य है किन्तु परिवर्तनशील विश्व के साथ उसे भी परिवर्तित होना पड़ेगा। यदि ईश्वर सर्वज्ञ है तो संगल्प भी स्वतंत्रता बाधित होती है। इस प्रकार ईश्वरवाद में व्यक्तित्वपूर्णता अनेक कठिनाईयां उत्पन्न करती है। कहीं–कहीं नैतिक एवं तत्वमीमांसी गुण भी विरोधाभास उत्पन्न करते हैं जैसे ईश्वर शक्तिशाली एवम् दयालु है तो विश्व में ऐसे दुख क्यों उत्पन्न होते हैं जिनके लिए मनुष्य उत्तरदायी नहीं है। यह अशुभ की समस्या मनुष्य के लिए एक चुनौती बनी हुई है।

4. ईश्वर द्वारा विश्व की रचना का अवचित्य सिद्ध नहीं हो पाता यदि ईश्वर ने निश्चित प्रयोजन या उद्‌देश्य से विश्व की रचना की है तो समस्या है कि यदि ईश्वर किसी इच्छा या प्रयोजन से जगत की रचना करता है तो वह पूर्ण नहीं हो या और यदि वह पूर्ण है तो उसका कोई प्रयोजन नही ंसकता। यदि जीवों के प्रति करुणा अथवा दया से प्रेरित होकर ईश्वर विश्व की रचना करता है तो यह असम्भव है क्योंकि विश्व रचना के पूर्व जीवों को अस्तित्व कैसे सम्भव है। वैष्णव वेदान्ती रामानुज जगत को ईश्वर की क्रीड़ा कहते हैं। इससे ईश्वर की अवोधता निष्प्रयोजनता एवम् अपूर्णता सिद्ध होती है क्योंकि इसमें मात्र आनन्द हेतु जगत रचना करता है।

निष्कर्ष – स्पष्ट है कि ईश्वरवाद भी जगत की रचना एवम् ईश्वर जगत के सम्बन्ध में तार्किक निष्कर्ष तक नहीं पंहुच पाता यद्यपि धार्मिक दृष्टिकोण से ईश्वरवाद द्वैतवाद तथा सर्वेश्वरवाद से अधिक प्रासंगित प्रतीत होता है यहां प्रो0 फ्लिन्ट का मत उचित है कि ईश्वरवाद से कम कोई धर्म स्वीकार करने योग्य नहीं है और इससे अधिक की कोई सम्भावना नहीं है।

खण्ड–4 ईश्वर के अस्तित्व हेतु युक्तियाँ
इकाई–10 सत्ता मूलक युक्ति

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 आलोचना

10.3 मूल्यांकन

10.4 निष्कर्ष

-----------------00---------

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में ईश्वर के अस्तित्व के एक प्रमाण के रूप में प्रत्ययसत्ता मूलक युक्ति पर विस्तृत चर्चा की गई है इस इकाई में इस युक्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ऐतिहासिक विवेचना के साथ आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया गया है प्रस्तावना विश्व के अधिकांश धर्म में ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास किया गया है तथा धर्मशास्त्र तथा धर्म दर्शन में भी ईश्वर की सट्टा संबंधी समस्या को केंद्रीय स्थान प्रदान किया जाता है ईश्वर की समस्या केवल धर्म धर्म शास्त्र या धर्म दर्शन की ही समस्या नहीं है अपितु यह एक दार्शनिक समस्या भी है तथा दर्शन के इतिहास के अवलोकन से यह पता चलता है कि विश्व के अधिकांश दार्शनिक भी किसी न किसी रूप में ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं

अब एक सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है कि अस्तित्व शब्द का अर्थ क्या है जब हम किसी वस्तु या विचारधारा के अस्तित्व की बात करते हैं तो इसका एक सीधा अर्थ यह है कि वह वस्तु अर्थात वह विद्यमान है या हमारे सामने यह हमारे मन में उपस्थित है अर्थात प्रत्यक्षता या प्रवचता वह हमारे अनुभव या हमारी तर्क बुद्धि का विषय बन सकती है विभिन्न धर्म एवं धर्म शास्त्रों में ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में जो धारणाएं स्थापित की गई उनमें ईश्वर के अंतर्गत विभिन्न गुना का भी समावेशन किया गया है उदाहरण ईश्वर सर्व शक्तिमान सर्वव्यापी सर्वश दयालुकृपालु शाश्वत अनाड़ी अनंत असीम सत्ता है

7.1 प्रस्तावना:-

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या ईश्वर को परमाणु के माध्यम से सिद्ध किया जा सकता है इसके उत्तर में उल्लेखनीय है कि ईश्वर के अस्तित्व के लिए दिए जाने वाले परमाणु को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है प्रथम वर्ग में वे प्रमाण आते हैं जो अनुभव पर आधारित है जैसे सृष्टि मूलक प्रमाण प्रयोजन मूलक प्रमाण तथा धार्मिक अनुभव संबंधी प्रमाण दूसरे वर्ग में हुए प्रमाण आते हैं जो अनुभव से स्वतंत्र हैं जिन्हें प्रगाणुभाविक प्रमाण कहते हैं जैसे प्रत्यय सत्ता मूलक युक्तियां प्राय यह कहा जाता है कि ईश्वर संबंधी प्रमाण अंतर संबंध है या एक दूसरे के पूरक है। जहां सट्टा मूलक तर्क

यह सिद्ध करता है कि ईश्वर है पर यह नहीं सिद्ध करता कि वह क्या है। वही सृष्टि मूलक प्रमाण यह प्रदर्शित करता है कि ईश्वर एक अनिवार्य सकता है। प्रयोजनमूलक प्रमाण यह सिद्ध करता है कि ईश्वर परम बुद्धिमान एवं सर्वशक्तिमान सत्ता है। रहस्यात्मक अनुभूति पर आधारित प्रमाण या सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि ईश्वर कौर ज्ञान का विषय नहीं है अपितु अनुभूति का विषय है।

ईश्वर के अस्तित्व के विभिन्न प्रमाणों में प्रथमता हम प्रत्ययसत्ता मलक तर्क को पाते हैं। यह तर्क शुद्ध एवं तर्कशास्त्रीय तर्क है तथा मंत्र ईश्वर की अवधारणा से ही ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि करने का प्रयास करता है। इसी कारण इसे प्रगाणुभाविक तर्क भी कहते हैं। इश्क तर्क को मानने वाले सभी विचारधारक प्रत्यय वादी है। इससे प्रत्ययसत्ता कहा जाता है क्योंकि इसमें ईश्वर के प्रत्यय के आधार पर ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित किया जाने का प्रयास किया गया है

उल्लेखनीय है कि इसका प्रारंभिक प्रमाण या विवेचन प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने 426-347 ईसा पूर्व के दर्शन में दृष्टतय है असमरणीय है की प्लेटों ने प्रत्यक्ष को ही शाश्वत नित्य तथा परम सत्ता के रूप में स्वीकार किया है तथा शुभ के प्रत्यक्ष को सर्वोच्च प्रत्यक्ष या परम प्रत्यय के रूप में प्रदर्शित या प्रतिवादित किया है। असम रेडी है की प्लेटों ने प्रत्यक्ष को ही शाश्वत नित्य तथा परम सत्ता के रूप में स्वीकार किया है तथा शुभ के प्रत्यक्ष को सर्वोच्च प्रत्यक्ष या परम प्रत्यय के रूप में प्रतिवादित किया है। प्लाटों ने शुभ के प्रत्यक्ष को ही ईश्वर के रूप में निरूपित किया है आगे चलकर मध्यकालीन युग में संत अगस्ताईंन ने भी प्लेटों की विचारधारा का अनुगमन किया तथा ईश्वर को परम सत्ता के रूप में स्वीकार किया उनके अनुसार ईश्वर में ही सभी वस्तुओं के प्रत्यय वस्तुओं के आधार एवं हेतु के रूप में पाए जाते हैं। वास्तव में इस प्रमाण के अग्रणी प्रणेता के रूप में संत इनसेलम का नाम सुविख्यात है । कालांतर में आधुनिक युग में रेनेडेकर्त ने भी प्रत्यक्ष युक्ति को प्रयोग किया तथा उनके अनुयाई दार्शनिक लाइविनित्ज ने भी इस युक्ति का समर्थन कर आगे बढ़ाया जाए कंतोत्तर दार्शनिक में ईगल तथा जान केयर्ड ने भी इस युक्ति का पक्ष भूषण किया उन्होंने इस युक्ति को प्रत्यक्ष वादी तथा अध्यात्म वादी रूप में प्रेषित किया समकालीन दार्शनिकों में नॉर्मल मैलाक्म में इसके समर्थक हुए। इन सब समर्थकों के विभिन्न तर्क पूर्ण विवेचन के पश्चात भी आगे समय-समय पर इस युक्ति की आलोचना भी की गई। संत थॉमस एकविनाश ने इस युक्ति का विरोध किया। देकर के समकालीन गैसेंडी ने वही आगे चलकर आलोचक वादी समीक्षा वादी दार्शनिक कास्ट की समीक्षा ने सबसे प्रबल विरोध दर्ज किया। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष वीडियो एवं भाभा विश्लेषण वीडियो में थी न केवल विरोध किया बल्कि ए जे और और जे सी स्मार्ट और जन किंडल इत्यादि ने भी अपने तर्क प्रस्तुत किया।

प्लेटोः- सत्तामूलक युक्ति को परनिष्ठित रूप प्रदान करने का श्रेय प्रसिद्ध मध्यकालीन दार्शनिक संत एंसेल्म को दिया जाता है उन्होंने अपनी पुस्तक प्रोस्लेजियन के अध्याय 2 में इस युक्ति का उल्लेख किया है याध्यापक उनके पूर्ण सर्वप्रथम प्लेटो द्वारा इस युक्ति का प्रयोग के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

प्लेटो के अनुसार वास्तविकताएं क्षणभंगुर तथा ज्ञाता पर निर्भर है इसलिए उन्हें परमसत्ताएं नहीं माना जा सकता है। परंतु वस्तुओं के अनुरूप प्रत्यक्ष रहते हैं जैसे अनेक गाएं हैं लेकिन उनके अनुरूप गोत्व या गायपन का प्रत्यय एक है। गायों का जन्म होगा मृत्यु भी होगी परंतु उनका गायत्व शाश्वत रहेगा फिर जितने प्रत्यय हैं वे व्यवस्थित रूप में पाए जाते हैं कम व्यापक प्रत्यय आधार में उससे अधिक व्यापक मध्य में तथा अत्यंत व्यापक चोटी पर रहते हैं इसे निम्नोचक्रमिक स्तूफाकर में शुभ का प्रत्यय चोटी पर रहता है तथा सभी प्रत्यय इसकी ओर आकृष्ट रहते हैं प्लेटो के लिए शुभ का प्रत्यय the idea of the good ही ईश्वर है। अब यदि प्रत्यय सत्य हो अर्थात तात्विक सत्य हो तो प्रत्यओ का प्रत्यय जो ईश्वर है वह पूर्ण तत्व होगा अथवा तात्विकसत अतः प्लेटों ने ईश्वर के कोरे अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया।

एंसेलम - इसी दिशा में आगे बढ़ते एंसेल्म में ही सत्तामूलक प्रमाण को क्लासिकल या परिनिश्ठित रूप दिया है। उनके अनुसार ईश्वर वह पूर्ण सत्ता है जिससे उच्चतर कोई अन्य सत्ता नहीं है परंतु यह पूर्ण सत्ता या केवल मस्तिस्कीय होगी या विचार में रहने के साथ तथ्य भी होगी। यदि वह सत्ता केवल विचार में ही हो तो वह पूर्ण सत्ता ना होगी क्योंकि इसकी अपेक्षा वह सत्ता जो विचार एवं यथार्थ दोनों में हो उच्चतर ठहराई जाएगी। इसलिए उच्चतम सत्ता या पूर्ण सत्ता वह है जो विचार एवं यथार्थ दोनों में पाई जाती हैं इसलिए कहा जा सकता है की वास्तविकता ईश्वर प्रत्यय का सारगुन है अर्थात ईश्वर प्रत्यय का तत्व ही है उसका अस्तित्व।

इसी युक्ति के समर्थन में इंसुलुम एक अन्य स्थान पर कहते हैं क्या मूर्ख अपने मन में कर सकता है कि ईश्वर नहीं है यह इस समय तर्कसंगत हो सकता है जब ईश्वर का अस्तित्व तथा अनास्तित्व दोनों संभव हो। पर इंसुलुम प्रश्न करते हैं कि क्या ईश्वर का अनस्तित्व विचार जा सकता है उनका कहना है कि यदि कोई ईश्वर प्रत्यय का सही-सही अर्थ समस्या समझना होगा तो वह मन में भी ईश्वर के एन अस्तित्व को नहीं सोच सकता। उदाहरण जैसे हम कहते हैं कि गुलाब लाल है तो हमें शिकार करना पड़ेगा कि यह रंगीन है गुलाब को लाल कहना तथा इस रंगीन का मानना आत्म विरोधी कहा जाएगा।

एनसेल्म के पश्चात आधुनिक दर्शन महान बुध्दिवादी रेनेदेकार्त ने इस तर्क को नए रूप में प्रतिष्ठित किया। दरेनेदेकार्त के अनुसार जिस प्रकार त्रिभुज को ज्ञान में ही यह ज्ञान भी निश्चित है कि तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है उसी प्रकार ईश्वर की पूर्णता में यह भी निश्चित है कि उसका अपना अस्तित्व है। अतः ईश्वर की पूर्णता में ही उसका अस्तित्व समाविष्ट है। देकार्त के परवर्ती बुद्धिवादी दार्शनिकों इस स्पिनोजा तथा लाईविनित्ज सत्तामूलक युक्ति का प्रयोग किया है स्पिनोजा के अनुसार ईश्वर का विचार एक अनंत द्रव्य का विचार है जो स्पष्ट और पर परिस्फुट है वही लाईविनित्ज अपने चिदुनुओ के सोपानक्रम में सर्वोच्च चिदानु के रूप में ईश्वर की व्याख्या करते हैं।

10.2 आलोचनाः-

ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करते हुए प्रत्ययसत्तमूल मूलक युक्ति से अनेक दार्शनिक सहमत हैं। इनसेलम के समकालीन गैनिलो ने उनकी सत्तामूलक युक्ति का खंडन किया उनका तर्क है मान लीजिए हम एक ऐसे द्वीप की कल्पना करते हैं जो सभी दृष्टियों से सर्वांगीण रूप से पूर्ण है। इस द्वीप का प्रत्यय हमारे मस्तिष्क में विद्यमान है तो क्या सत्तामूलक युक्ति के अनुसार इस प्रकार का पूर्ण एवं सुंदरतम द्वीप का वास्तविक रूप से अस्तितत्वमान होना अनिवार्य है। वास्तविक एवं यथार्थ ना होने पर द्वीप की पूर्णता बाधित होती है यहां इनसेलम का स्पष्टीकरण है कि सभी सांसारिक वस्तुएं आकस्मिक हैं इसलिए ईश्वर के अस्तित्व अन्य किसी वस्तु पर यह युक्ति लागू नहीं हो सकती।

इनसेलम के स्पष्टीकरण को कांट नहीं मानते उनके अनुसार ईश्वर की पूर्णता के प्रत्यय में उसकी सत्ता निहित नहीं होती अस्तित्व को गुण नहीं माना जा सकता क्योंकि गुण सदैव अस्तित्व पर आश्रित रहता है इसलिए गुण में ही अस्तित्व को मान लेना ठीक नहीं है।

पुनः जब हम किसी वस्तु के गुणों की बात करते हैं तो उसके द्वारा अनिवार्यतह विषय बताते हैं और जब हमें उसके अस्तित्व की बात करते हैं तो अनिवार्यता है उसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं उदाहरण जब हम कहते हैं की विशेष वस्तु का अस्तित्व है तो यह पंक्ति वास्तु के यथार्थ रूप में अस्तित्वान होने का संकेत है किंतु जब हम कहते हैं कि गुलाब लाल है तब हम गुलाब की लालियों के बारे में जानकारी देते हैं। वास्तुवादी दार्शनिक एडवर्ड मूर ने भी सत्ता को गुण मानने पर आपत्ति की है।

एक अन्य तर्क में कांट कहते हैं कि परिभाषा में ही अस्तित्व को मान लेने की प्रकृति अतार्किक है। जैसे त्रिभुज की परिभाषा में तीन कोणों का होना स्वाभाविक है किंतु मात्र इस परिभाषा से त्रिकोण का वास्तविक अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। उनके अनुसार यदि हमारे मन में 21 गिन्नियों की धारणा है तो इसे मात्र वैचारिक सत्ता सिद्ध होती है ना कि उसका वास्तविक अस्तित्व सिद्ध होता है

कांट के अनुसार यदि कोई व्यक्ति त्रिभुज के प्रत्यय को स्वीकार करता है तभी वह त्रिभुज के तीनों कोणों को स्वीकार करेगा यदि कोई व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार न करें तो यह युक्ति निरर्थक हो जाएगी। बोसांके गणितीय सूत्रों के माध्यम से सिद्ध करते हैं कि इस युक्ति से आकारिक सत्ता सिद्ध होती है जरूरी नहीं है कि वह वह जगत में हो अर्थात ईश्वर का होना चाहिए किंतु वह है नहीं समकालीन भाषाई विश्लेषक दार्शनिकों ने सत्तामूलक तर्क पर आपत्ति की है। कारनेय के अनुसार मैं हूं ह और ईश्वर है जैसे कथनों में है का प्रयोग अस्तित्व वाचक रूप में न होकर संयोजन के रूप में होता है।

10.3 मूल्यांकन

कांट की आपत्तियों को कुछ दार्शनिक सही नहीं मानते। हेगन के अनुसार कांट द्वारा विचार व वस्तुओं में भेद करना ठीक नहीं है कांट की आपत्तिया सांसारिक वस्तुओं पर लागू होती है। ईश्वर पर नहीं क्योंकि ईश्वर का प्रत्यय अद्वितीय एवं अलौकिक है। केयर्ड के अनुसार ईश्वर तथा विश्व संबंधी चेतना का मूल केंद्र आत्मा है जिस प्रकार सोचने से होना अनिवार्य सिद्ध होता है उसी प्रकार ईश्वर के प्रत्यय से उसकी सत्ता भी सिद्ध हो जाएगी। यह ईश्वर की सत्ता मूल्यात्मक दृष्टि है ना की भौतिक दृष्टि से।

आधुनिक धार्मिक भाषा के चिंतक जी. ई. ह्यूज उसे मानते हैं की धार्मिक सिद्धांत मूल्यों तथा संप्रदायों को व्यक्त करते हैं ना कि किसी तथ्य का वर्णन करते हैं। वैज्ञानिक भाषा एवं धार्मिक भाषा में अंतर होता है। अतः धार्मिक भाषा के अंतर्गत ईश्वर को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया गया है। उल्लेखनीय है कि वैचारिक विकास क्रम में कांट ईश्वर के अस्तित्व को नैतिकता की पूर्व मान्यता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

10.4 निष्कर्ष :-

वस्तुता ईश्वर प्रमाण एवं तर्क का विषय नहीं है इसलिए काण्ट ईश्वर को आस्था के आधार पर स्वीकार करने पर बल देते है ।तथापि सत्तामूलक तर्क धार्मिक एवं ईश्वर विषयक दृष्टि से महत्वपूर्ण है इसकी महत्ता यह है कि सभी परम्परागत युक्तियों का आधार है। गैलिनों ने इसे ईश्वर विषयक युक्तियों का प्राण कहा है। केयर्ड के अनुसार यह तर्क अन्य युक्तियों का आधार है क्योंकि यह विचार को महत्व देता है।

...................000...............

इकाई–11

विश्वमूलक युक्ति

इकाई की रूपरेखा–

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 ईश्वर के अस्तित्वकोसिद्ध के लिए विश्वमूलक युक्ति

11.3 ग्रीकदार्शनिकप्लेटो एवंअरस्तू का विश्मूलकप्रमाण के पक्ष मेंतर्क

11.4 विश्मूलकप्रमाण के पक्ष में एक्वानस का तर्क

11.5 विश्मूलकप्रमाण के पक्ष में ह्यूम का तर्क

11.6 विश्मूलकप्रमाण के विपक्ष मेंकाण्ट का तर्क

11.7 विश्मूलकप्रमाण के पक्ष में जी0एच0 जायस का तर्क

11.8 विश्वमूलकप्रमाणका डेविड ह्यूम द्वारा खण्डन

11.9 बर्टेण्डरसेल द्वाराविश्वमूलक युक्ति का खण्डन

11.10 विश्वमूलक युक्ति का इमान्युलकाण्ट द्वारा खण्डन

11.11 निष्कर्ष

11.12 सारांश

11.13 प्रश्नबोध

11.14 उपयोगी पुस्तक

11.0 उद्देश्य

ईश्वर की सत्ताको प्रमाणित करने के लिए विभिन्न धर्मपरायण व्यक्तियों ने विभिन्नतर्कों का सहारा लिया है। धर्मपरायण व्यक्तियों के द्वारा ईश्वर के अनेक रुपों मेंवर्णन किया है। इसका परिणाम यह है कि ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए ईश्वर के स्वरुप के सम्बन्ध में जो वर्णन मिलता है; उसकी भी महत्वपूर्ण भूमिका है प्रायः सभी धर्मपरायण व्यक्तियों ने ईश्वर को विश्व का स्रष्टा माना है। सृष्टि के आधार पर इसके स्रष्टा के रुप में परिकल्पना हमें विश्व मूलक प्रमाण की ओर ले जाती है। जहाँ प्रत्यय मूलक प्रमाण को ईश्वर की सिद्धि के लिए प्रागनुभाविक तर्क के रुप मेंमाना जाताहै; वहीं विश्व मूलक प्रमाण को ईश्वर की सिद्धि के लिए आनुभाविक प्रमाण के रुप में जाना जाता है। जहाँ ईश्वर की सिद्धि के लिए दिए गए सत्ता मूलक प्रमाण प्रत्यय (विचार) को प्रमुखता दी जाती हैं, वहीं विश्वमूलक प्रमाण में यथार्थता को प्रमुखता दी जाती है।

विश्वमूलक प्रमाण का प्रारम्भिक बिन्दु विश्व की वास्तविक वस्तुएँ है। विश्वमूलक प्रमाण में विश्व को कार्यमान लिया जाता है और इसके निमित्त कारण (स्रष्टा) के रुप मेंईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया गयाहै। विश्व मूलक प्रमाण के समर्थक दार्शनिकों का यह कहना है कि विश्व की यथार्थ वस्तुओं के आधार पर ईश्वर का अनिवार्य सत्ता को सिद्ध किया जा सकता है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक विश्वमूलक प्रमाण ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए दार्शनिकों और वैज्ञानिकों के लिए आकर्षण का विषय रहा है।

ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए दिये गये विश्वमूलक प्रमाण का उद्देश्य तर्क के द्वारा ईश्वरमें आस्था उत्पन्न करना रहाहै। यह तर्क दार्शनिकों एवं वैज्ञानिको ंके लिए समान रुप से महत्वपूर्ण इसलिए हो जाताहै, क्योंकि इसके अन्तर्गत जगत् वास्तविक वस्तुओं के कारण के रुप में ईश्वर की सत्ताको प्रमाणित करने का प्रयासकिया गया है। प्रायः इस तर्कको प्रस्तुत करनेवाले दार्शनिक ईश्वर को विश्व के आदिकारण, निमित्तकारण, निमित्त एवं उपादान दोनोंकारण, अनिवार्य कारण इत्यादि रुप में वर्णित किया है।

11.1 प्रस्तावना

ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए विश्वमूलक प्रमाण को आनुभाविक प्रमाण कहागयाहै; क्योंकि यहाँ हमारा प्रस्थान विश्व की आकस्मिक वस्तुएँ हैं और वस्तु विशेष अनुभव हो सकता है। चूँकि इस प्रमाण का प्रारम्भिक बिन्दु अनुभव और वास्तविक वस्तुएं हैं। इसलिए कहा जाता है कि एकेश्वर वादी प्रत्यय और वास्तविकता को प्राथमिकता देताहै, प्रत्यय को नहीं। प्रायः सभी एकेश्वर वादीदार्शनिक एवं धर्मपरायण व्यक्ति ईश्वर में प्रत्यय और सत्ता को अवियोज्य रुप से एक मानतेहैं। पाश्चात्य दर्शन में विश्वमूलक प्रमाणबहुत प्राचीनकाल से ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए दिया जानेवाला एक प्रमुख प्रमाणरहाहै।

यद्यपि विश्व मूलक प्रमाण का बीज रुप प्लेटो एवं अरस्तू के दर्शन में मिलता है; किन्तु इसे व्यवस्थित तर्क के रुप में प्रस्तुत करने का श्रेय ग्रीक मध्यकालीन दार्शनिक सन्त टॉमस एक्वानस (1224–1274) को जाता है। ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए विश्वमूलक प्रमाण की व्याख्या दो प्रकार से की गयी है।कुछ धर्मपरायण व्यक्ति एवं दार्शनिक विश्व मूलक प्रमाण को कारण कार्य सिद्धान्त पर आधारित मानते हैं, तो कुछ इस प्रमाण को विश्व की आपतिकता पर आधारित करते हैं। वास्तविकता यह है कि विश्वमूलक प्रमाण विश्व की आकस्मिकता पर निर्भर करता है या कारण–कार्य सिद्धान्त पर निर्भरकरता है; इसे लेकर दार्शनिकों में बहुत हीमतभेद रहाहै।

ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए दियेगये विश्व मूलक प्रमाण जहाँ एक और विश्व को कार्य और ईश्वर को इसका सृष्टिकर्ता माना गया है; वहीं दूसरी ओर जगत् की आपातिक वस्तुओं की सत्ता के लिए किसी अनिवार्य सत्ता का होना आवश्यक माना गयाहै। इसलिए विश्वमूलक प्रमाण के अन्तर्गत कारण–कार्य युक्ति और आपातिक वस्तुओं की सत्ता के लिए ईश्वर के रुप में एक अनिवार्य सत्ता को स्वीकार करना आवश्यक मानागयाहै। विश्व की जितनी ससीम वस्तुएँ हैं; वे अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य वस्तुपर नर्भर हैं। अतएव एक ऐसे ईश्वर की आवश्यकता अनुभव की जातीहै। जिसेस्वनिर्भर, स्वाश्रितऔर स्वंयभूमाना जाए

और जो अन्य सभी आपातिक वस्तुओं का अनिवार्य आधार हो। ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए दियागया कार्य–कारण सिद्धान्त निम्नलिखिततर्को पर आधारित है–

1. कोईभी घटना बिना कारण के संभव नहींहोसकतीहै। अतः प्रत्येक घटना का कोई न कोईकारण अवश्य होगा।
2. घटनाओं की श्रृंखला निरन्तरचलतीरहतीहै। 'क' का कारण 'ख', 'ख' का कारण 'ग', 'ग' का कारण 'घ' इत्यादि अनुक्रम लगातार चलता रहता है।
3. घटनाओं के इस अनुक्रम का कोई अन्त नहीं दिखायी पड़ता है। यदि ऐसा है; तो अनिश्चित श्रेणियों तक पहुँचना भी संभव नहीं मालूम पड़ता है। अतः अनवस्था दोष से बचने के लिए इस अनुक्रम का; जिसे हमविश्व कहतेहैंकोई न कोईआदि कारणमानना पड़ता है।
4. विश्व मेंजितनी भी वस्तुएँ है; उनके अनुक्रम की व्यवस्था को विश्व की संज्ञा दी जातीहै। इस विश्व के आदि कारण को आद्य प्रवर्तककहा जा सकताहै; जिसके द्वाराअन्य सभी घटनाएं घटितहोतीहैऔरजो सभी घटनाओं का कारण होताहै; पर जोस्वयंकिसीअन्य कारण से नियमितनहींहोताहै। इसी आद्य प्रर्वतक कोग्रीक दार्शनिक प्लेटों ने अपनेदर्शनमें 'शुभ–प्रत्यय की संज्ञा से अभिहित कियाहै औरअरस्तु ने विश्वमेंपायीजानेवालीसभीगतिशीलवस्तुओं के गति का आद्य प्रवर्तक के रुप मेंईश्वरकोवर्णितकियाहै।
5. इस प्रकारकारण–कार्यसिद्धान्तमें यह स्पष्टकरने का प्रयाससकियागयाहैकिईश्वरसम्पूर्णविश्व का कारणहै; किन्तुईश्वर का कोईकारणनहींहै।ईश्वरसम्पूर्णविश्व का आदिकारणहै; जिसकाविश्व के कारण–कार्यश्रृंखलामेंसर्वोच्चस्थानहै। ऐसाइसलिए है; क्योंकिविश्व की सभीवस्तुएंससीमऔरसान्तहैऔरईश्वरही एक ऐसीअसीम एवंअनन्तसत्ताहै; जिससेऔरअधिकव्यापकसत्ता की कल्पनानहीं की जासकतीहै।अतएवविश्वमूलकप्रमाणकोईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए

प्रस्तुतकरनेवाले धर्मपरायण व्यक्ति एवंदार्शनिकों का यह कहनाहैकि इस प्रमाण से ईश्वर की सत्तासिद्ध होतीहै।

11.2 ईश्वर के अस्तित्वकोसिद्ध के लिए विश्वमूलक युक्ति

ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धी के लिए दियेगये इस प्रमाणकोविश्मूलकप्रमाणइसलिए कहाजाताहैकिक्योंकिअंग्रेजी शब्द 'Cosmos' का अर्थहीविश्व या संसारहै। यह एक अनुभवमूलक युक्ति (Aposteriori Argument) है।प्रायः किसीवस्तु के अस्तित्व या संसार से तात्पर्य यह होताहैकिवहहमारेअनुभव या तर्कबुद्धि का विषय है या होसकतीहै।ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए दीगयी यह युक्तिकिसी न किसी रुप मेंमनुष्य के स्वयं केअनुभवपरआधारितहै। यह विश्वमूलक युक्तिही 'सृष्टिमूलक' युक्ति का प्रयोगकिया।अरस्तु ने प्लेटों से प्रेरणालेकरगति के आधारपरईश्वरकोअप्रवर्तितप्रर्वतक (Unmoved Mover) सिद्ध किया।वास्तविकता यह हैकिईश्वर के अस्तित्व के लिए दीगयीसृष्टिमूलक युक्ति के नाम से ही यह स्पष्टहोताहैकि इस युक्ति का सम्बन्ध 'सृष्टि' या 'जगत' से है। इस युक्तिमें 'जगत' या 'सृष्टि' के अस्त्तिव के आधारपरईश्वर की सत्ताको प्रमाणित करने का प्रयासकियागयाहै।प्राचीनकाल से हीईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में यह तर्कदियाजातारहाहैकि 'ईश्वरसृष्टि का आदिकरणहै' औरउसकाअस्तित्वकार्य–कारणनियम से सिद्ध होताहै।' पाश्चात्य दर्शनमेंग्रीकदार्शनिकप्लेटोअरस्तु, एक्वानस, देकार्त, लाइबनीत्ज एवंभारतीय दर्शनमेंनैयायिकोंतथा अद्वैत वेदान्त के समर्थकों ने ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए सृष्टिमूलकप्रमाणकोप्रस्तुतकियेहैं।वस्तुतः सृष्टिमूलकप्रमाण का सम्बन्ध विश्वमेंविद्यमान 'गति' 'आकस्मिकता' या 'कारणता' से है।

11.3 ग्रीकदार्शनिकप्लेटो एवंअरस्तू का विश्मूलकप्रमाण के पक्ष मेंतर्क

सर्वप्रथमग्रीक के महानदार्शनिकअरस्तु ने ईश्वरको एक ऐसीअप्रवर्तितप्रर्वतककहाहै, जोविश्व की सभीवस्तुओंकोगतिप्रदानकरताहै।अरस्तु का अनुकरणकरतेहुए मध्यकालीनदार्शनिकसन्त एक्वीनास ने भीविश्वमेंविद्यमानगति का कारणईश्वरकोमानाहै। एक्वीनास का माननाहैकिविश्वमेंसर्वत्र गति, परिवर्तन एवंपरिणामहै।गतिस्वयंउत्पन्ननहींहोसकती; क्योंकिगति का कोई न

कोईकारणहोताहै।पुनः उस गति का भीकोईकारणहोनाचाहिए। इस प्रकार यह क्रमचलतारहेगाऔरअनवस्थादोषउत्पन्नहोजाताहै।इसलिए अनन्त श्रृखंला के परिणामस्वरुपउत्पन्नहोनेवाले इस दोष से बचने के लिए एक ऐसीसत्ताकोस्वीकारकरनापड़ताहैजोसमस्तगतिमानवस्तुओं का आदिकरणहै।अर्थात्–सर्वप्रथमगतिप्रदानकरनेवालीवहीसत्ताहै।

परन्तुईश्वर के अस्तित्व के लिए गतिमूलकतर्क के विरुद्ध यह आपत्तिउठायीगयीहै। इस युक्तिमें एक गतिहीनईश्वरसम्पूर्णविश्वमेंविद्यमानगति का आदिकारणमानलियागयाहै; जबकि यह अनुभवसिद्ध तथ्य हैकिकेवलवहीसत्ता या वस्तुगतिउत्पन्नकरसकतीहै, जो स्वंय गतिशीलहो।अतएव यहाँ प्रश्नउठताहैकिईश्वरकोगतिरहितसत्ताक्योंमानागयाहै? इसकेअतिरिक्त यदि यह मानभीलियाजाए किविश्वमेंविद्यमानगति का एक मूलकारण या आदिकारणहै; तोइससेसिद्ध नहींहोताहैकिवहसत्ताईश्वरहीहै, जोसर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवंसर्वव्यापीहै।

11.4 विश्मूलकप्रमाण के पक्ष में एक्वानस का तर्क

विश्वमूलक युक्ति या सृष्टिमूलकप्रमाण का ही एक भागआकस्मिकतासम्बन्धीप्रमाणहै।सन्तथामस एक्विनास ने विश्वमेंविद्यमानवस्तुओं की आपतिकता के आधारपर यह सिद्ध करने का प्रयासकियागयाहैकिईश्वर की सत्ताआपातिक न होकरअनिवार्यहै।विश्व की आकस्मिक या आपातिकवस्तुओं के श्रृखंलापरविचारकरतेहुए एक्वीनास यह तर्कदेतेहैंकि– ''या तोआकस्मिकवस्तुओं की श्रृंखलाअनन्तहैअथवाइसकेमूलमेंकोई ऐसीसत्ताहै; जोविश्व की सभीवस्तुओं का मूल या आदिकारणहै।इसलिए आकस्मिक एवं क्षणिकविश्व की समुचितव्याख्या के लिए स्वनिर्भर, स्वाश्रित एवंस्वंयभूजैसीअनिवार्यसत्ताकोस्वीकारनाआवश्यक है।'' एक्वीनास की मान्यताहैकि ''क्षणभंगुरवास्तविकताकिसीअनिवार्यसत्ता का आह्वाहनकरतीहै।''

11.5 विश्मूलकप्रमाण के पक्ष में ह्यूम का तर्क

एक्वीनास के आकस्मिकतासम्बन्धी युक्ति का खण्डनकरतेहुए ह्यूम कहतेहैकि– ''यह मान्यताप्रागनुभाविकहै।''

11.6 विश्मूलकप्रमाण के विपक्ष मेंकाण्ट का तर्क

ह्यूम की हीभॉतिकाण्ट का भीमाननाहैकि ''चाहे एक्वीनासकुछभीकहे, उनका मत यथार्थमेंसत्तामूलकप्रमाण का छद्मरुपहै। यहाँ केवलप्रमाणमें एक के स्थानपरदोप्रमाणहैं–

1. विश्व की सभी घटनाएँ आपातिकहैंऔरआपातिकबिनाकिसीअनिवार्यसत्ता के संभवनहींहै।तथा
2. अनिवार्यसत्ताहै, जिसकास्वरुपहीहैकिवहवास्तविकरहे।

अतएवकाण्टभीआकस्मिकतासम्बन्धी युक्तिकोप्रागनुभाविकमानतेहैं।

आकस्मिकतासम्बन्धी युक्ति के समर्थकविश्व की आपातिकवस्तुओं की व्याख्या के लिए ईश्वर की अनिवार्यसत्ताकोस्वीकारकरने की बातकरतेहैं।परन्तु यह प्रश्नहीनिरर्थकहैकिविश्व की व्याख्या किसप्रकार की जासकतीहै?

आकस्मिकतासम्बन्धीप्रमाण के समर्थकदार्शनिकईश्वर के अस्तित्वकोसिद्ध करने के लिए एक ओरतोविश्व की घटनाओंकोअनन्तश्रृंखलामानरहेहैं; तोदुसरीओरइसकेअन्तहोने की बातकररहेहैं।भलाअनन्त का अंत कैसेहोगा? इसलिए अनन्तकाल के प्रवाहमेंअन्तहोने की बातआत्मविरोधीलगतीहै।अनन्तप्रवाह से यह सिद्ध होताहैकि– ''विश्वआत्मसंचालित, आत्मनियमित एवंआत्मनियंत्रित सत्ताहैऔरइसककेलिए किसीविश्वेत्तरसत्ता की आवश्यकतानहींहै।''

विश्वमूलक या सृष्टिमूलकप्रमाण का बहुप्रचलित रुप कारणता की धारणापरआधारितहै। यहीकारणहैकिसृष्टिमूलकप्रमाणकोकारणमूलकप्रमाणभीकहाजाताहै।भारतीय दर्शनमेंन्याय दर्शन के आचार्यउदयन ने ईश्वर की सत्ताकोसिद्ध करने के लिए 'न्याय कुसुमांजलि' करणमूलकतर्ककोदियाहै।पाश्चात्य दर्शन के अनेकदार्शनिकों ने कारणमूलक युक्ति के द्वाराईश्वरसत्ताकोसिद्ध करने क प्रयासहै।कारणमूलक युक्ति की सहायता से ईश्वर की सत्ताकोसिद्ध करनेवालेदार्शनिकों का यह माननाहैकि ''प्राकृतिकजगत ऐसाकार्यहै; जिसकाकारणईश्वरकोहीमानाजासकताहै।''

11.7 विश्मूलकप्रमाण के पक्ष में जी0एच0 जायस का तर्क

जी0एच0 जॉयस ने 'Principles of Natural Technology'मेंकहाहैकि– ''प्रथम या मूलकारण के अभावमेंकिसीभीगौणकारण की सत्तासंभवनहींहै।चूँकिगौणकारणों का अस्तित्वहै; इसलिए हमें यह माननाहोगा, इनकारण–कार्य के मूलमें एक प्रथमकारणअवश्य हैजोसभीकारणों का कारणहै।'' अतएवप्राकृतिकजगत की सत्ता की व्याख्या के लिए एक मूलसत्ताकोस्वीकारकरनापड़ताहैजिसेईश्वर की सत्ता के रुप मेंजानाजाताहै; किन्तु ऐसास्वीकारकरनातभीआवश्यक है; जब यह मानलियाजाए किसंसार के अस्तित्व का कोईअनिवार्यकारणहै।

कारणमूलकप्रमाण के विरुद्ध प्रमुख आपत्ति यह उठायीजातीहैकि इस युक्ति के समर्थक इस प्रश्न का कोईउत्तरनहीं दे पातेहैं यदिसभीवस्तुओं का कोई न कोईकारणहै; तोईश्वर का कारणक्याहै? वहअकारणक्योंहै? कारणमूलक युक्ति के समर्थकदार्शनिकईश्वरकोस्वंयभूतथाअपनाकारण स्वंय हीबतातेहैं।परन्तुकारणमूलकतर्क के समर्थकदार्शनिकों से यह प्रश्नभीकियाजासकताहैकि यदिईश्वरअकारणहोसकताहै; तो यह विश्वअकारणक्यों नही होसकता? यदिकिसीवस्तुकोअकारणमाननाआवश्यक है, तोविश्वकोहीअकारणक्यों न मानलियाजाए और यह मानलियाजाए कि यह विश्वस्वचालित, आत्मनियमित एवंआत्मनियंत्रित सत्ताहै, क्योंकिविश्व का अनुभवहमेंहोताहै, जबकिईश्वरअनुभवातीतसत्ताहै।

11.8 विश्वमूलकप्रमाणका डेविड ह्यूम द्वारा खण्डन

पाश्चात्य दार्शनिकडेविड ह्यूम ने कारणमूलक युक्तिमेंतीनप्रमुख दोषदिखलाए हैं–

1. यदिविश्व के सभीकार्यो का आदिकारण या मूलकारणमाननाहीहै; तोईश्वर के बजाय प्रकृतिकोहीआदि या मूलकारणक्यों न मानाजाए? यदिअनवस्थादोष से बचने के लिए ईश्वरकोआदिकारण के रुप मेंस्वीकारकियाजाताहै; तोप्रकृतिकोभीआदिकारणस्वीकारकरकेअनवस्थादोष से बचाजासकताहै।

2. किसीविशिष्टकार्य का कोईविशिष्टकारणहोताहै।संसार के सभीकार्यो के योगको 'विश्व' कहाजाताहै; जबकिविश्वकेवलसंसार के सभीकार्यो का समुदाय मात्र नहींहै।इसलिए विश्व के कारण की कल्पनाकरनाअनावश्यक एवंनिराधारहै। ह्यूम के अनुसारकारण–कार्यश्रृंखलाअनन्तहै। इस कारण–कार्य की अनन्तश्रृंखला के मूलमेंकिसीसामूहिककार्य का कारणमाननाव्यर्थहै।
3. ह्यूम का कथनहैकि यदि यह मानभीलियाजाय किजगत का कोईमूलकारणहै; तबभी यह सिद्ध नहींहोताहैकिवहमूलकारणईश्वरहै। यह मूलकारणईश्वरहै। यह मूलकारणईश्वर न होकरकोईआसुरी शक्ति या जड़ शक्तिहोसकतीहै।

कारणमूलक युक्तिमेंउपर्युक्तदोषोंकोदिखाने के पश्चात् ह्यूम कहतेहैंकिहमाराविचारसीमित से असीमित की ओर बढ़ताहै, क्योंकिबुद्धि, अनिश्चतता या अनवस्थापरनहीं रुक सकती।अतएवउसमेंपूर्ण एवं निरपेक्ष का विचारउत्पन्नहोताहै, किन्तु इस प्रकार की बौद्धिक कल्पनाकरने के लिए कोईतार्किकआधार नही हैऔर एक प्रकार की बौद्धिक छलांगहैतथाआतार्किक एवंनिराधारहै।जिससीमितविश्व के आधारपरईश्वर का अनुमानकियाजाताहै, वहअसीमितनहींहोसकताहै; क्योंकिकारणमेंभीउतनेहीगुणमानेजातेहै; जितनेकार्यमेंहोतेहैं।

11.9 बर्टेण्डरसेल द्वाराविश्वमूलक युक्ति का खण्डन

कारणमूलकतर्क के सम्बन्ध मेंबर्टेण्डरसेल ने यह सवालउठायाहैकिहमक्यों यह मानलेंकिईश्वर की अस्तित्वहै।वस्तुतः ईश्वरकोविश्व का आदिकारणवेदार्शनिकमानतेहैंजोजगत् की बौद्धिक व्याख्या कोसंभवमानतेहैं।हम यह क्योंमानलेंकिजगत की बौद्धिक व्याख्या संभवहै।

कुछदार्शनिकों का यह भीकहनाहैकिकारणमूलकपरिभाषा से भीईश्वर की सत्तासिद्ध नहींहोतीहै। यदिबर्फेनहर्ड के अनुसार यह मानलियाजाए किकारणतादोवस्तुओं का साह्चर्यहै; तोइससेभीईश्वर की सत्तासिद्ध नही होतीहै, क्योंकिहमउन्हीं घटनाओं का कारण के रुप मेंव्याख्या करसकतेहै; जिनकाहमअनुभवकरतेहैं, इसलिए कारणता का प्रयोग घटनाओंपरकियाजासकताहै, ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए नहीं।

11.10 विश्वमूलक युक्ति का इमान्युलकाण्ट द्वारा खण्डन

जर्मनदार्शनिकइमान्युलकाण्टईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए दियेगयेकारणमूलक युक्ति की आलोचनाकरतेहुए कहतेहैंकि–''यदिकारणता के सम्प्रत्तय वैध हैं, तोइससेईश्वर के सत्ताा की सिद्धि होतीहै; किन्तु यहाँ कठिनाई यह हैकिईश्वर एक अतीन्द्रिय सत्ताहै, जिसपरकारणतानामकविकल्पआरोपितनहींकियाजासकताहै।कारणमाननेपरईश्वरकोव्यावहारिकजगत की वस्तुमाननापड़ेंगा, जोउचितनहींहै।दूसरेईश्वर एक पूर्णसत्ताहैऔरपूर्णसत्ताकिसीअन्य वस्तु के अस्तित्वकोस्वीकारनहींकरतीहै। ऐसीस्थितिमेंकारण–कार्य का भावहीकैसेउत्पन्नहोसकताहै।'' अतएवकाण्ट यह दिखातेहैंकिविश्वमूलक या कारणमूलक युक्तिहमें एक उभयतः पाश की ओरअग्रसरकरतीहै–

1. यदिईश्वरकार्य–कारणश्रृंखला की एक कड़ीहै, तोवहकभीपारमार्थिकनहींकहाजासकता ।
2. यदिईश्वरपारमार्थिकनहींहै, तोवहजगत का आदिकारणनहींहोसकताहै।

उपर्युक्तउभयतः पाशके आधारपरकाण्ट यह निष्कर्षनिकालतेहैंकि– ''अनुभवातीतसत्ता के ऊपरबुद्धि विकल्पों के प्रयोग के लिए कोईमापदण्डनहींहै; किन्तुसृष्टिमूलकप्रमाणमेंहमेंअनुभवजगत से परेजानेमेंसमर्थबनाने के लिए इसकाप्रयोगकियागयाहै। 'आवश्यक' एवं 'अनिवार्य' पदों का प्रयोगकेवलतर्कवाक्योंमेंहोनाचाहिएं''

अबतकईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए कारमूलक युक्ति का समीक्षात्मकविश्लेषणकरनेपर यह स्पष्टहोताहैकिकारण–कार्यनियम से केवल यही प्रमाणित होरहाहैकिकारण–कार्यनियम से केवल यही प्रमाणित होरहाहैकिप्रत्येककार्य का कोईकारणअवश्य होताहै।ईश्वर की सिद्धि के लिए दियेगयेकारणमूलक युक्तिमेंपहलेतोविश्व की व्याख्या के लिए कारण–कार्यश्रृंखला का त्यागकरदियाजाताहै।वास्तविकता यह हैकिजोअनवस्थादोषविश्व के बारेमेंहोसकताहै, वहीदोषईश्वर के बारेमेंभीहोसकताहै।वहीदोषईश्वर के बारेमेंभीहोसकताहै।जोकारण–कार्यसम्बन्धीप्रश्नविश्व के विषय मेंउठायेजासकतेहै; वहीईश्वर के सम्बन्ध मेंउठायेजासकतेहै।अतएवविश्वमूलकप्रमाणभीईश्वर के अस्तित्वकोसिद्ध करने के लिए पर्याप्तनहींमानाजासकताहै।

11.11 निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहाजासकताहैकिविश्वमूलक युक्ति के जितनेभी रुप हैं, किसी न किसीप्रकार की विसंगति से परिपूर्णहै।सबकीअपनीसीमाएँ हैं।परिणामस्वरुपवेअविश्वसनीय, दोषपूर्णहोने के कारणअस्वीकार्यहै।जॉनहास्पर्स ने विश्वमूलक युक्तिपरअपनीपुस्तक 'An Introduction to Philosphical Analysis' मेंपर टिप्पणी करतेहुए कहाहैकि– ''यदिकारणमूलक युक्ति के द्वाराईश्वर की सत्ता प्रमाणित होतीहै, तोवहईश्वर की इस विशेषता के अतिरिक्तकिवहविश्व का कारणहैऔरकिन्हींअन्य विशेषताओं की स्थापनानहींकरपाता।'' विश्वमूलक युक्ति के विषय में प्रो0 केयर्डतो यहाँ तककहतेहैंकि– ''यह युक्तिससीमआत्माओं का खण्डनकरईश्वरऔरजगत के बीच खाईउपस्थितकरताहै; जो धार्मिकभावना के विकासमें बाधकहै।''

11.12 सारांश

प्राचीनकाल से हीविश्वमूलकप्रमाण धर्मपरायण व्यक्तियों एवंदार्शनिकों के लिए सर्वाधिकलोकप्रिय प्रमाणरहाहै।विश्वमूलकप्रमाणमेंविश्वको एक कार्यमानकरउसकेकारण के रुप मेंईश्वर की सत्ताकोसिद्ध करने का प्रयासकियागयाहै।विश्वमूलकप्रमाण का प्रयोगईश्वर की सत्ताकोसिद्ध करने के लिए तीनप्रकार की युक्तियों की सहायतालीगयीहैजो इस प्रकारहै–

1. गतिमूलकतर्क (**Argument from motion**)
   विश्वमूलकप्रमाण के इस तर्कमें यह दिखायागयाहैकिविश्व की प्रत्येकवस्तुगतिशीलहै।कोईभीवस्तु स्वतः गतिशीलनहींहोसकतीहै।प्रत्येकवस्तुमेंगति का कारणकोईदूसरीसत्ताहै; दूसरीसत्ता का कारणकोईतीसरीसत्ताऔरतीसरीसत्ता का कारणकोईचौथीसत्ताहै। इस प्रकारगतियों की अनन्तपरम्पराहैं; जिसकेकारणअन्ततः अनवस्थादोषउत्पन्नहोजाएगाऔरइसीअनवस्थादोषसे बचने के लिए सम्पूर्णगतियों के आदिकारण के रुप मेंईश्वर की सत्ताकोस्वीकारकरनाअनिवार्यमानाजाताहै।

2. आकस्मिकतामूलक या आपातिकतामूलकतर्क (**Argument from contigency**)
   विश्वमूलकप्रमाण के आकस्मिकतामूलकतर्कमें यह दिखायागयाहैकिजगत् की जितनीभीवस्तुएंहैंवेआकस्मिकहैं।विश्व की किसीभीवस्तु का होना या न

होनाअनिवार्यनहींहै।विश्व की सभीवस्तुएंअपनीआकस्मिकसत्ता रखने के कारणकिसीदूसरीसत्तापरनिर्भरहै।इसलिए विश्व की आपातिकवस्तुओं का मूलकारणकोईआपातिकसत्तानहींहोसकतीहै।अतएव एक ऐसीसत्ताकोस्वीकारकरनाअनिवार्यहै; जोसमस्तआकस्मिकताओंआधारहोतेहुए भी स्वंय अनिवार्यहैऔरवहसत्ताईश्वरहै।

3. कारणमूलकतर्क (**Causal Argument**)

इस सिद्धान्तमें यह दिखायागयाहैकिप्रत्येककार्य का कोई न कोईकारणअवश्य होताहै। यह विश्वअनन्त एवंजटिलहै।अतएव इस विश्व का मूलकारणभीकोई ऐसीहीसत्ताहोसकतीहै; जोअनन्त, असीमऔरस्वंयभूहो।ईश्वरही ऐसीसत्ताहैजोस्वयंभूऔरआत्मनिर्भरहैऔरविश्वरुपीकार्य का मूलकारणहै।विश्वमूलकप्रमाण के पक्ष मेंतर्कदेनेवालेदार्शनिकोंमेंप्लेटों, अरस्तु, एक्वास, लाइबनित्ज, जी0एच0 जॉयसआदिप्रमुख रुप से उल्लेखनीय हैं।दार्शनिकोंमेंडेविड ह्यूम, काण्ट, बर्टेण्डरसेलआदिदार्शनिकों का प्रमुख स्थानहै।

11.13 प्रश्नबोध

1. कारण–कार्यपरआधारितविश्वमूलकप्रमाण की आलोचनात्मकव्याख्या कीजिए।
2. आपातिकतापरआधारितविश्वमूलकप्रमाण की आलोचनात्मकव्याख्या कीजिए।
3. विश्वमूलकप्रमाण के विरुद्ध विभिन्नदार्शनिकों के दियेगयेतर्को की समीक्षा कीजिए।

11.14 उपयोगीपुस्तक

1. समकालीन धर्मदर्शन– डॉ0 याकूबमसीह
2. धर्मदर्शन की मूलसमस्याएँ– डॉ0 वेदप्रकाशवर्मा
3. धर्मदर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन – डॉ0 शिवभानु सिंह

इकाई–12–प्रयोजनमूलक युक्ति

इकाई की रूपरेखा–

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 ईश्वर के अस्तित्व की सिद्ध के लिए प्रयोजन मूलक प्रमाण

12.3 **Tecnological** शब्द का शाब्दिक अर्थ

12.4 प्रमुख भारतीय दार्शनिक एवं सन्त एक्वानस का उद्देश्य मूलक प्रमाण के पक्ष मेंतर्क

12.5 उद्देश्य मूलक प्रमाण के पक्ष मेंविलियम पेले का तर्क

12.6 उद्देश्य मूलक प्रमाण के पक्ष में जेम्स मार्टिनों का तर्क

12.7 मिल एवं चार्ल्स डार्विन द्वारा उद्देश्य मूलक प्रमाण का खण्डन

12.8 डेविड ह्यूम एवं इमान्युल काण्ट द्वारा उद्देश्य मूलक प्रमाण का खण्डन

12.9 केअर्ड के द्वारा उद्देश्य मूलक प्रमाण का खण्डन

12.10 पिंगल पेटिसन एवं बोसांके के द्वारा पेले और मार्टिनो के तर्क का समर्थन

12.11 उद्देश्य मूलक प्रमाण के पक्ष में एफ0आर0 टेनेन्ट का तर्क

12.12 उद्देश्य मूलक प्रमाण के पक्ष में रिचर्ड टेलर का तर्क

12.13 उद्देश्य मूलक प्रमाण के पक्ष में ए0 आई0 ब्राउन का तर्क

12.14 उद्देश्य मूलक प्रमाण का मिल एवंकेअर्ड द्वारा खण्डन

12.15 उद्देश्य मूलक प्रमाण पर डेविड ह्यूम की टिप्पणी

12.16 निष्कर्ष

12.17 सारांश

12.18 प्रश्नबोध

12.19 उपयोगी पुस्तक

12.0 उद्देश्य

धर्मपरायण व्यक्तियों एवं धर्मदार्शनिकों के लिए ईश्वर की सत्ताकोसिद्ध करना एक प्रमुख समस्यारहीहै।सभी धर्मपरायण व्यक्तियों एवं धर्मदार्शनिकों ने यह पायाकिईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए सत्तामूलकप्रमाणऔरविश्वमूलकप्रमाणअसफलरहेहैं।जितनेभीतर्कसत्तामूलकप्रमाण द्वारादियागयाहै; उसकेपक्ष मेंउतनेहीतर्कदियेगयेहै। ऐसीस्थितिमें धर्मपरायण व्यक्तियों एवं धर्मदार्शनिकों के द्वाराईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए उद्देश्यमूलकप्रमाणमेंविश्वमेंविद्यमानव्यवस्था के आधारपरसिद्ध करने का प्रयासकियागयाहै।प्रस्तुतइकाईमेंइसीबात का आकलनकरने का प्रयासकियागयाहैकिक्याविश्वमेंपायीजानीवालीव्यवस्थाबिनाकिसीअपरिमितबुद्धि वाले के बिनासंभवहै।विश्वजितनासुव्यवस्थितहैऔरजोसुसंगतता एवंसामंज्जस्य है; वहकिसीअपरिमितबुद्धि वाले रचयिता के बिनासंभव नही होसकतीहै। इस इकाई का उद्देश्य विश्वमेंविद्यमानसामंज्जस्य औरसुव्यवस्था के आधारपरईश्वर की सत्ताकोसिद्ध करनाहै।

12.1 प्रस्तावना

धर्म के इतिहास के दृष्टिकोण से उद्‌श्यमूलकप्रमाणकोप्राचीनतमसबसेअधिकलोकप्रिय औरसर्वमान्य प्रमाणकहाजासकताहै।प्लेटो ने यह कहाहैकि नक्षत्र, ग्रहऔरतारे इस प्रकारगतिकरतेरहतेहै; मानोंइन्हेंकिसीबुद्धि ने इस प्रकारउन्हेंसंचालितकियाहै।ग्रीकदार्शनिकप्लेटो के पश्चात् अनेकदार्शनिकोंप्रकृतिमेंविद्यमानव्यवस्थाईश्वर के द्वारासंभवमानाहै।सन्तपॉल का यह स्पष्ट रुप से कहनाहैकिईश्वर की नित्यताऔरउसकाआदृश्य रुप प्रकृति की रचनामेंप्रकटहोताहै।हेनरीमोर (सन् 1614–1687) विलियमपेली (सन् 1743 से 1805), जेम्स मार्टिनों (सन् 1805 से 1900) औरआधुनिक युग के प्रमुख दार्शनिक एफ0आर0 टेनैन्ट (सन् 1866–1957) ने ईश्वर की सत्ता की सिद्धि के लिए उद्देश्यमूलकप्रमाणको एक सम्यक् दार्शनिक युक्ति के रुप मेंईश्वर की सत्ताकोसिद्ध करने का प्रयासकियाहै।परन्तु ऐसेअनेकदार्शनिकहैं; जिन्होंनेउद्देश्यमूलकप्रमाण का खण्डनकरकेइसकीलोकप्रियताकोकिसी न किसी रुप

मेंप्रभावितकियाहै। ह्यूम, मिल, काण्टइत्यादि ऐसेदार्शनिकहै, जिन्होंनेउद्देश्यमूलकप्रमाण का सशक्त खण्डनकियाहै।

12.2 ईश्वर के अस्तित्व कीसिद्ध के लिए प्रयोजनमूलकप्रमाण

प्रयोजनमूलकतर्ककोरचनामूलकतर्कभीकहाजाताहै, क्योंकिइसमेंसृष्टि की रचना के आधारपरबुद्धि दैवीसृष्टिकर्ता का अनुमानकरतीहै। यह प्रमाणईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए सर्वाधिकमहत्वपूर्णप्रमाणमानाजाताहैक्योंकिकेवलदार्शनिकों ने हीनहीं; बल्किवैज्ञानिकों ने भीइसकीमहत्ताकोस्वीकारकियाहै। ह्यूम तथाकाण्टजैसेदार्शनिकों का स्पष्टमाननाहैकि– ''अन्य तर्को की अपेक्षा यह तर्कआदर के साथउल्लेखनीय है।चूँकि यह विश्वमेंनिहितप्रयोजन की ओरहमारा ध्यानआकर्षितकरताहै, इसलिए यह प्राचीनतास्पष्टता एवंविवकेशीलताआदिविशेषताओं से युक्तहै।''

12.3 **Tecnological** शब्द का शाब्दिकअर्थ

जहाँ तकTecnologicalशब्द के शाब्दिकअर्थ का सवालहैतो यह Tecnologicalशब्दग्रीकभाषा के Telos से बनाहै।जिसकाअर्थप्रयोजनहै।कुंछदार्शनिकों का यह माननाहैकि यह तर्कसृष्टिमूलकप्रमाण का हीविकसित रुप या विस्तार का प्रतीकहै।इसमेंभीविश्व के स्वरुप से उसकेनिर्माता का अनुमानलगायाजाताहै।किन्तु यह मत उचितनहींहै; क्योंकिसृष्टिमूलकतर्कमेंजहाँ सृष्टि के प्रथमकारणअथवास्रोत का अनुमानकियाजाताहै; वहाँ प्रयोजनमूलकतर्कमेंसृष्टिप्राप्तहोताहै।कारणमूलकतर्कबाह्य–कारण के विचार का द्योतकहै; जबकिप्रयोजनमूलकतर्कमेंप्रयोजन या उद्देश्य का प्रत्यय निहितहै, तोदोप्रश्नउठतेहैं।विश्वमेंपरिवर्तन 'कैस' एवं 'क्यों' संभवहै? प्रथमप्रश्नपरविचारसृष्टिमूलकप्रमाणमेंकियाजाताहै, किन्तुजब यह विचारकियाजाताहैकि यह परिवर्तनक्योंहोताहैतोइसकाउत्तरप्रयोजनमूलकतर्क द्वाराप्राप्तहोताहै।अतः दोनोंको एक नहींमानाजासकता।

12.4 प्रमुख भारतीय दार्शनिक एवंसन्त एक्वानस का उद्देश्यमूलकप्रमाण के पक्ष मेंतर्क

भारतीय दर्शनमेंन्याय–वैशेषिक, योग्य एवं अद्धैत वेदान्तमें इस प्रमाण का उल्लेख मिलताहै।पाश्चात्य दर्शनमेंसर्वप्रथमप्लेटोतदुपरान्त मध्यकालीनदार्शनिक एक्वीनस ने इस तर्क का प्रयोगकिया।प्रयोजनमूलकतर्क के नाम से ही यह स्पष्टहोताहैकिइसके द्वाराविश्वमेंविद्यमानव्यवस्था, अभियोजनतथाप्रयोजन के आधारपरईश्वर के अस्तित्वकोसिद्ध करने का प्रयत्नकियागयाहै। इस प्रमाण के समर्थकदार्शनिको का यह माननाहैकि– ''विश्वआकस्मिक या अन्धाधुन्ध घटनानहींहै; क्योंकिइसकेअन्दरइतनी योजनाऔरसम्बद्धताहैकिसभीस्थलोंपरअभियोजना एवंअभिकल्पदिखलायीपड़ताहै।इसलिए यह विश्वबुद्धिमान यंत्रकार का अभिकल्पहै।चूँकि इस विश्वरुपी यंत्र मेंइतनीजटिलता, इतनीगहनता एवंइतनीसूक्ष्मतादिखलायीपड़तीहैकि इस विश्वकोबनानेवालाअपरिमितबुद्धि वालाहीहोसकताहै।अतः इस विश्व का रचयिताअपिरमित, निरपेक्ष सत्ताहै, जिसेईश्वर की संज्ञादीजासकतीहै।''

12.5 उद्देश्यमूलकप्रमाण के पक्ष मेंविलियमपेले का तर्क

प्रयोजनमूलकतर्क का ईश्वर के अस्तित्वकोसिद्ध करने के लिए सर्वाधिकस्पष्ट रुप मेंप्रयोगपाश्चात्य दार्शनिकविलियमपेले ने अपनीपुस्तक 'नेचुरलथियोलॉजी' मेंकिया।उनकाकहनाहैकि– ''समस्तविश्व एक जटिल यंत्र है; जिसकीसूक्ष्म यांत्रिकताइसकेअंग–प्रत्यंगमेंअभिलक्षितहोतीहै।क्या इस प्रकार का जटिल एवंविशाल यंत्र अपनेआप से उत्पन्नहोसकताहैऔरफिर यह अपनेआप इतना सुचारु रुप से संचालितरहसकताहैऔरफिर यह अपने मत की पुष्टि के लिए तर्कदेतेहुए कहतेहैंकि–मानलिजिए यदिकिसीकोकोई घड़ीनिर्जनरेगिस्तानमेंपड़ीहुईमिलतीहै; तोक्याकोई यह कल्पनाकरसकताहैकि यह घड़ीअपनेआपबालुका से वायु के प्रचण्डथपेड़े से उत्पन्नहुईहै।क्याइसकेकाँटे, स्प्रिंग, कुंजीइत्यादिअपनेआपउत्पन्नहोसकतीहैऔरअपनेआपआपसमें इस प्रकारसम्बद्ध होसकतीहैकिवहनियमित रुप मेंचलकरसही–सही समय बतावें। यदि एक छोटे से यंत्र घड़ी के बारेमें यह बातनहींसोचीजासकती; तो इस विश्व के सम्बन्ध मे जिसकेकण–कणमेंसूक्ष्म एवंगहनजटिलताछिपीहुईहैकैसेसोचाजासकताहैकि यह अपनेआपउत्पन्नहोकरव्यवस्थित रुप में युगों से संचालितहै? अपनेवर्तमान रुप मेंब्रह्माण्ड का अस्तित्वइसकेबुद्धिमानरचयिता के

अस्तित्वसिद्ध करताहैऔरइसीरचयिताकोईश्वर की संज्ञादीजातीहै।परन्तु यदिउसीरेगिस्तानमें एक चट्टानमिलताहै; तोहमउसकेविषय में इस प्रकार का अनुमाननहींलगासकते; क्योंकिउसकेभागोंमें न कोईव्यवस्थाहैऔर न हीउसकाकोईप्रयोजनहै। इस प्रकार यह स्पष्टहोताहैकिप्रकृतिमेंजोसन्तुलनबनाहुआहैऔरइसमेंजोसुसम्बद्धता देखनेकोमिलतीहै, इसकेआधारपरहमें एक सर्वज्ञतथासर्वशक्तिमानईश्वर की सत्ताकोमानने के लिए विवशहोनापड़ताहै।विलियमपेले के अनुसार– (1) रेगिस्तान या निर्जनप्रदेशमेंअचानक घड़ीमिलनेपरहमउसकेरचनाकार का अनुमानकरतेहैं।उसीप्रकारविश्वमेंव्याप्तअद्‌भुतव्यवस्था एवंप्रयोजनको देखकरहमविश्व के प्रायोजक का अनुमानलगातेहैं।प्रकृतिमेंसर्वत्र ऐसीव्यवस्था देखनेकोमिलतीहै, जोविशिष्टरचनाकार या प्रायोजक का द्योतकहै।

(2) यदि घड़ी के कुछभागठीकप्रकार से कार्यनहींकरते; तोइससे उस परआधारितहमारा घड़ीसाजसम्बन्धीअनुमानअयुक्तिसंगतनहींसिद्ध होता; क्योंकि घड़ी की उपस्थिति मात्र उसकेनिर्माताकोअनिवार्यतः प्रमाणित करतीहै।इसीप्रकार यदिजगत का कार्यभीसुव्यवस्थितढंग से न हो; तोभीमाननाहैकिइसकीरचनाकिसीसर्वज्ञसत्ता द्वाराहुईहै; किन्तुइसमेंकुछन्यूवताहै।

(3)यदि हम उस घड़ी के कुछभागों के कार्यकोभलीभॉतिनहीं समझपातेतोइससेभीहमारा घड़ीसाजविषयकअनुमानगलत प्रमाणित नहींहोता; क्योंकिइसकेलिए घड़ी के सभीभागों के कार्यकोठीक–ठीक समझनाअनिवार्यतनहींहै।इसीप्रकार यदिजगत की कुछवस्तुएँ ऐसीहोजिनकीहमेंजानकारी न होतोइससे यह सिद्ध नहींहोताकिइसकीरचनाकिसीसर्वज्ञसत्ता द्वारा नही हुईहै।

विलियमपेलेपुनः यह भीतर्कदेतेहैंकि यदिहमप्रकृति की वस्तुओंविशेषकरमानव शरीरको देखेंतोस्पष्टहोताहैकिइसकाकोई न कोईस्रष्टाअवश्य रहाहै। यदिहमकेवलआँखों की संरचनापरविचारकरें; तोउसकीजटिलता एवंउद्देश्य से सिद्ध होताहैकिइसकीरचनाअकस्मात् नहींहुईहै; बल्किइसकीरचनाकिसीविशेषउद्देश्य से किसीबुद्धिपूर्णसत्ता ने की है। यहीसत्ताईश्वरहै।जगतमेंसामंन्जस्य व क्रमबद्धता (Harmony and Order) मिलतीहै।सामंजस्य एवंक्रमबद्धतावहीउत्पन्नकरसकताहै; जोबुद्धिपूर्णहो।बुद्धिरहितप्राकृतिकवस्तुएँ किसीभीप्रकार की

व्यवस्थाउत्पन्नकरनेमेंअसमर्थहैं।अतः चाहेंकिसीविशेषवस्तु की रचना की बातहो या जगत् की; दोनों के आधारपरसिद्ध होताहैकिकिसीबौद्धिक सत्ता ने इसकीरचना की है। यहीबौद्धिक सत्ताईश्वरहै।

12.6 उद्देश्यमूलकप्रमाण के पक्ष मेंजेम्समार्टिनों का तर्क

जेम्समार्टिनो (James Martineau)ने पेले द्वाराप्रस्तुतउपर्युक्ततर्ककोऔरभीअधिकस्पष्ट रुप से प्रस्तुतकियाहै।इनका यह माननाहैकिविश्व स्वतः नहींउत्पन्नहुआहै।इसकानिर्माणकर्ताकोईअवश्य है।विश्व की रचना के पीछेउसकाउद्देश्य है। यह उद्देश्य विश्व की व्यवस्थाको देखकरहीज्ञातहोजाताहै।मार्टिनों के अनुसारबुद्धि तथाप्रयोजनमूलकव्यवस्थाा के कुछ लक्षणहैंजैसेचयन (), संयोगऔरक्रमिकता। ये सभी लक्षणविश्व के जीवों के शरीर की रचनातथाअभियोजनमेंमिलतेहैं।उदाहरणार्थ–जीवों के अंगों का चुनावउनकीपरिस्थिति के अनुकूलहीकियागयाहै।हिंसकजानवरों के तेजपंजे, चिड़ियों के लिए पंखोंतथा जल मेंरहनेवालेजीवों के स्वॉस के अंग उनकीपरिस्थिति के अनुकूलहीचुनेगयेहैं। इस चुनाव से असीमबुद्धि की ओरसंकेतमिलताहै। यही नही जीवों के अंगोंमेंसंयोगतथाक्रमिकतापूर्णव्यवस्थाको देखकरही प्रमाणित कियाजाताहैकि इस विश्व का रचयिताकोईमहान शक्तिहै, जिसने इस विश्वकोबुद्धिमत्ता से व्यवस्थितकियाहै। यहीसत्ताईश्वरहै।

12.7 मिल एवंचार्ल्सडार्विन द्वाराउद्देश्यमूलकप्रमाण का खण्डन

परन्तु मिल तथाचार्ल्सडार्विन के विकासवादऔरउसकेपश्चात् प्राणिशास्त्र मे होनेवालेवैज्ञानिकअनुसन्धानों ने पेलेतथामार्टिनों के प्रयोजनवादीतर्कों का सशक्त रुप में खण्डनकियाहै।विकासवादीमान्यता के अनुसारसृष्टिमेंप्राकृतिकनियमों के अनुसार स्वतः विकासहोरहाहै।भौतिक एवं प्राणी जगतमें 'योग्यतम की विजय' तथा 'प्राकृतिकचयन' जैसेनियमों के अनुसारसृष्टि का निरन्तरविकासहोरहाहै।इसमेंकिसीचेतनअथवाप्रायोजन शक्ति का कोईस्थान नही है। इस प्रकारविकासवादीमान्यतामेंईश्वर की धारणाआवश्यक नहींहै।

12.8 डेविड ह्यूम एवंइमान्युलकाण्ट द्वाराउद्देश्यमूलकप्रमाण का खण्डन

डेविड ह्यूम अपनीरचना 'डायलाग्सकनसर्निंगरिलिजन' मेंस्पष्टकियाहैकि– ''जीवन संग्राममेंसंरक्षितरहने का यह शर्तहैकिजीवअपनीपरिस्थिति के साथअभियोजितरहे। यदिप्राणियों के अंग–प्रत्यंग की समायोजनापूर्णव्यवस्था न होतीतोवे युगान्तारों के उथल–पुथलमेंअनुजीवितरहहीनहींसकतेथे।इसलिए यह विश्वस्वरचित, स्वसंचालितव्यवस्थापूर्णसत्ताहैऔर इस व्यवस्था की व्याख्या करने के लिए किसीचेतनामय शक्ति की प्राक्कल्पनाकरनाव्यर्थहै।''

डेविड ह्यूम एवंइमान्युलकाण्ट ने विलियमपेले एवंमार्टिनों के प्रयोजनमूलकतर्क की कटुआलोचना की है।डेविड ह्यूम ने प्रयोजिनात्मक युक्ति के विरुद्ध निम्न त्रुटियों की ओरसंकेतकियाहै–

(1) इस युक्तिमेंविश्वको देखकरईश्वरकोविश्व के स्रष्टा के रुप मेंस्वीकारकियागयाहै, ह्यूम के अनुसारविश्वरुपीकार्यजिसे देखकरईश्वरकोकारणके रुप मेंचित्रित कियागयाहै, ससीमहै।ससीमकार्य से ससीमकारण की हीस्थापनाहोसकतीहै।कारणमेंउन्हींगुणोंकोआरोपितकियाजासकताहैजोकार्यमेंनिहितहै।प्रयोजनात्मक युक्तिमेंइसकेविपरीतविश्वजो एक सीमितकार्यहै, के आधारपरईश्वरअर्थात् असीमितकारणकोस्थापितकियागयाहै। इस प्रकार इस युक्तिमेंकार्य–कारणनियम का उल्लंघनकियागयाहै, जिसकेफलस्वरुप यह युक्तिदोषपूर्णहै।

(2) प्रयोजनमूलक युक्तिजिससाम्यानुसारपरआधारितहै, वहअत्यन्तहीदुर्बल एवंदोषपूर्णहै।सिर्फवहीसाम्यानुसारवैध मानाजासकताहै, जिसकेअसंख्य उदाहरणउपलब्ध होंतथाजिसकीपुनरावृत्तिसंभवहो।उदाहरणास्वरुप एक मिलकरबनायाहोगा।इसकाकारण यह हैकि इस घटना के अनेकोंउदाहरणमिलतेहैअर्थात् इस घटना की पुनरावृत्तिसंभवहै। इस प्रकारभवनको देखकरहमउसकेनिर्माताशिल्पकार की सत्ता का अनुमानकरसकतेहैं।परन्तु यहीबातहमईश्वरसम्बन्धीसाम्यानुसार के बारेमेंनहीं कह सकते।क्योंकिअनेकप्रयासों के बावजूदबार–बारहमईश्वर द्वाराविश्वकोनिर्मितहोतेनहीं देख सकते।विश्वविषयकसृष्टि एक ऐसी

घटनाहै, जिसकीपुनरावृत्तिनहींहोसकती।अतः भवनशिल्पकारतथाविश्वस्रष्टामेंपर्याप्तसाम्य नहींहै, जिसकेफलस्वरुपविश्व से विश्वस्रष्टाईश्वरअनुमतिकियाजासके।

इस प्रकार यह स्पष्टहोताहैकिप्रयोजनात्मकतर्क के आधारपर एक ईश्वर की सत्ताकोनहीं प्रमाणित कियाजासकताहै।ईश्वर की एकात्मकता के विरुद्ध ह्यूम के इस मत कोफिलो ने संवादमें इस प्रकारव्यक्तकियाहै– ''एक मकान या जहाजकोअनेकोंव्यक्तिमिलकरबनातेहैं; विश्वतोऔरभीजटिलहै। यह क्यों न मानलियाजाए किविश्व की रचनाअनेकोंदेवताओं ने मिलकरही की है; जोसीमितसामर्थ्यवालेहैं।''

कुछदार्शनिकों का कहनाहै यदिहम यह मानभीलेंकिसम्पूर्णविश्वमेंकोईप्रयोजननिहितहै; तबभी यह सिद्ध नहींहोताकि इस प्रयोजनके मूलमेंकोईचेतन शक्ति या ईश्वरका संकल्पनिहितहै। यदिहमविश्व के प्रयोजनकर्ताकोईश्वरमानतेहैं; तोप्रश्नउठसकताहैकिईश्वरमेंप्रयोजन या बुद्धि कहाँ से आयीं? जिसप्रकार घड़ीसाजको घड़ी के निर्माण के लिए उपादानसामग्री, प्रयोजन या बुद्धि की आवश्यकतापड़तीहै, उसीप्रकारईश्वर द्वारानिर्मितविश्वमेंउपादान, प्रयोजन एवंबुद्धि की आवश्यकतापड़ीहोगी। इस प्रकारजोतर्कविश्व के बारेमेंउठायाजाताहैऔरजिसकेअनुसार यह मानाजाताहैकिविश्वमेंव्यक्तव्यवस्था एवंप्रयोजनईश्वर से प्राप्तहोतेहैं, वहीतर्कईश्वर के बारेमेंकियाजाताहैकिईश्वरमें ये तत्वकहाँ आये? परम्परानुसारप्रयोजनमूलकतर्ककोसृष्टिमूलकप्रमाण से जोड़ने की चेष्टा की जातीहै; किन्तुहमइनतर्कोकोकितनाहीजोड़ने की चेष्टाकरें; इनसेईश्वर की सत्तासिद्ध नहींहोती।

इमान्युलकाण्ट के अनुसार यदिप्रयोजनमूलक युक्तिवैध है; तोभीकेवलइससे ऐसीसत्ता का अस्तित्वसिद्ध होताहै; जोसृष्टिको एक निश्चितआकारप्रदानकरताहै, उसकीउत्पत्तिनहींकरता। इस तर्क से एक शिल्पकार की सत्तासिद्ध होतीहै, ईश्वर की नहीं।इसलिए जबतक यह सिद्ध नहींहोताहैकि यह अनिवार्यसत्ताहैऔरअनिवार्यसत्तापूर्णसत्ताहै, तबतकईश्वर का अस्तित्वभी इस युक्ति के द्वारानहींसिद्ध होताहै। यह तभीसंभवहोसकताहै; जबप्रत्ययमूलक एवंसृष्टिमूलक युक्त्याँ वैध हों।वास्तविकता यह हैकिहमाराजगतसम्बन्धीअनुभवसीमितहैऔरसीमितअनुभव के निष्कर्षसम्पूर्णजगत के परिचायकनहींहोसकते।काण्ट यह स्वीकारकरतेहैंकि– ''इस अनुमान के

आधारपरविश्व के रचयिता की सत्ता का अवश्य संकेतमिलताहै; किन्तु यह रचनाकार धर्ममेंस्वीकृतसर्वशक्तिमानईश्वर नही मानाजासकता। यह रचनात्मकउपलब्धि तथाउत्पादनसामग्रीआदि के द्वारासीमितहै। इस तर्क से एक शिल्पकार की सत्तासिद्ध होतीहै; ईश्वर की नहीं।''

12.9 केअर्ड के द्वाराउद्देश्यमूलकप्रमाण का खण्डन

केयर्ड के अनुसार ''यह तर्क धार्मिकभावनाकोठेसपहुँचाताहै।बाह्य शिल्पकार का विचारपूर्णईश्वर के विचार के प्रतिकूलहै।अतः यह धार्मिकभावना के अनुकूलईश्वर की स्थापनाकरनेमेंअसमर्थसिद्ध होताहै। यह ईश्वर के मानवीकरण की प्रवृत्ति का द्योतकहै।इसमेंईश्वरमेंशिल्पकारजैसीविशेषताएंआरोपित की जातीहै।अधिक से अधिक यह ऐसासादृश्यानुमानहै; जिसमेंईश्वर की संभावनाप्रकटहोतीहै, किन्तुप्रामाणिकतानहीं।''

12.10 पिंगलपेटिसन एवंबोसांके के द्वारापेलेऔरमार्टिनो के तर्क का समर्थन

परन्तुउपर्युक्त खण्डनों से बचने के लिए हेगल से प्रभावितहोकरप्रिंगलपेटिसनतथाबोसांके ने पेलेतथामार्टिनों की तरहविकासकोजीवोंतकसीमित न रखकरजागतिक रुप मेंप्रस्तुतकियाहै।उन्होंनेबतायाकिविश्व के विकास की व्याख्या यांत्रिक नियमों के आधारपरनहीं की जासकती; क्योंकिविश्वमेंप्राप्त जीवन की कुछ ऐसीविशेषताएँ हैंजैसे; प्रजनन–प्रक्रिया, स्वतः–संचालन की क्रिया, स्वतः स्फूर्तितथा स्व उद्धारआदि, जो यांत्रिकता के सर्वथाविरुद्ध हैं। यहीनहींमानवमेंनैतिकताविकास, अनुशासन, सहयोगऔरइनसेफलितविज्ञान, कलासाहित्य, नीति एवं धर्मसिद्ध करतेहैंकिमानव जीवन मेंमूल्यों का अस्तित्वहै।विश्वइन्हींमूल्योंपरआधारितहै।बुद्धि से हीइनमानवीय मूल्यों का विकाससिद्ध होताहै। यदिहमसमाष्टि रुप मे विश्वपरदृष्टिपातकरें; तोउसकेपीछेमूल्ययुक्तमहानबुद्धिमान शक्तिअर्थात् ईश्वरकोहीप्राप्तकरेंगे।

12.11 उद्देश्यमूलकप्रमाण के पक्ष में एफ0आर0 टेनेन्ट का तर्क

एफ0आर0टेनेन्ट (F.R. Tennant) ने अपनीकृति 'Philosphical Theology' में इस तर्ककोनवीन रुप मेंप्रतिपादितकियाहै। उनके अनुसारविशेषवस्तुओं की रचना यद्यपि ईश्वर के

अस्तित्वकोसिद्ध नहींकरती; फिरभीसम्पूर्णसृष्टिपर एक साथविचारकरने से ईश्वर का अस्तित्वअनिवार्यहोजाताहै।विभिन्नकारणात्मकनियमोंऔरविभिन्नसंयोगो (Chances) के क्रियाशीलरहनेपरभीसृष्टि की एकतासुरक्षितरहतीहै।सृष्टिजोभीउत्पत्तिकरतीहै; तोवहपहले से अधिकविकसितहोतीहै। यदिकोईअवस्थाउपयुक्तनहींहै; तोवहसमाप्तहोजातीहै।सृष्टि के समन्वितविकास से प्रकृतिमेंसौन्दर्य एवंनैतिकमूल्य संभवहोताहै।इसकोदृष्टिमें रखतेहुए सृष्टि की व्याख्या करतेहुए इस प्राक्कल्पनाकोस्वीकारकरनाआवश्यक होजाताहैकिसृष्टि के मूलमेंकोईचेतनतत्वनिहितहै। यहीतत्वईश्वरहै।

12.12 उद्देश्यमूलकप्रमाण के पक्ष मेंरिचर्डटेलर का तर्क

समकालीनदार्शनिकोंमें 'रिचर्ड टेलर (Richard Teylor) का कहनाहैकि यदिहमकिसी शहर के नजदीकहैंऔरवहाँ परपत्थर के टुकड़े इस प्रकारपड़ेहैंकिउनसे यह वाक्य बनताहैकि ''Welcome to the city'' अर्थात् शहरमेंआपकास्वागतहै। इसे हमदो रुपों मेंलेसकतेहैं–

(1) या तोहममानेकिप्राकृतिककारणों से पत्थरोंको यह आकार मिल गयाहै; या

(2) फिर यह मानेकिकिसी न किसी ने जानबूझकरपत्थरोंको इस क्रममें रखा है।

प्रथमविकल्पकोमाननेपरहम इसे सार्थकवाक्य नहींमानेंगे; लेकिन द्वितीय स्थितिमेंवाक्य सार्थकहोजाताहै। यह नही होसकताकिहमवाक्य कोसार्थकमानेंऔरकिसीलेखक के अस्तित्वकोस्वीकार न करें। यहीबातहमारेअंगों के लिए भीसत्य है।आँखों के द्वाराहमसूचनाएँ प्राप्तकरतेहैंऔर उन परनिर्भररहकरहमअपनी योजनाएँ बनातेहैं। यदिआँखेकेवलआकस्मिक रुप से उत्पन्नहुईहैं; तोउन्हेंहमकिसीसूचना के लिए विश्वसनीय नहींमानसकते। यदिहमउन्हेंविश्वसनीय मानतेहैं; तोइसकाअर्थहैकिउन्हेंकिसीप्रयोजन के लिए बनायागयाहैऔर यह प्रयोजनकोईप्राकृतिकवस्तु या व्यक्ति का नहींहै; बल्कि एक अतिप्राकृतिकव्यक्ति का है; जिसनेआँखोंतथाअन्य योनियों की रचनाकी। यहीसत्ताईश्वरहै।

प्रयोजनमूलक युक्ति के विरुद्ध कुछदार्शनिकों का माननाहैकिजगत की रचनाअणुओं से हुईहै; किसीव्यक्ति या ईश्वर द्वाराइसकीरचनानहींहुईहै। ऐसानहींकिईश्वर ने

पहलेप्राणियोंकोबनायाऔरबादमेंजगतको; बल्किओजोनमेंजितने प्राणी रहसकतेथे; उत्पन्नहोगयेहैं।प्रायः जोलोग घड़ी से जगत के रचना की तुलनाकरतेहै; उन्हेंजगत के रचना की तुलनाप्रकृति से करनाचाहिए।मनुष्य द्वाररचितवस्तुओं से जगत की तुलनानहीं की जासकती।

कुछदार्शनिकों का भीमाननाहैकिसम्पूर्णविश्वपरदृष्टिपातकरनेपर यह पता चलताहैकिविश्वमेंअव्यवस्था का आधिपत्य है। इस संसारमेंसुख के साथ दुःख भीसर्वत्र व्याप्तहै। यह निर्विवादतथ्य हैकिअनेकभंयकरप्राकृतिकआपदाओंतथा घातकरोगों के फलस्वरुप इस संसार के समस्त प्राणी व्यापक रुप से तीव्रपीड़ातथा दुःख का अनुभवकरतेहैं। यह विश्वव्यवस्थामेंव्याप्तअनेकअपूर्णताओं का हीप्रतिफलहै। यदि इस संसार का रचयिताईश्वरसचमुचसर्वशक्तिमान, सर्वज्ञतथाअत्यन्तदयालुहोता; तोनिश्चय हीइसमेंइतनीअधिकपीड़ा न होती। इस विश्वमेंव्याप्ततीव्रपीड़ा एवं दुःख से यही प्रमाणित होताहैकि यदिईश्वर इस जगत का रचयिताहै; तोवहनिश्चय हीसर्वशक्तिमान, सर्वज्ञतथाअत्यन्तदयालुनहींहैऔरउसनेप्राणियों के सुख के लिए जगत की रचनानहीं की है। इस प्रकारजगत की अपूर्णताएँ यह प्रमाणित करतीहैंकिइसकाकोईबुद्धिमानरचयितानहींहैऔरवहअपूर्णतथाअपनेकार्यमेंनितान्तअकुशलहै।

12.13 उद्देश्यमूलकप्रमाण के पक्ष में ए0 आई0 ब्राउन का तर्क

ए0आई0 ब्राउननवीनवैज्ञानिकअनुसन्धानों के आधारपर यह दिखायाहैकिहमारीपृथ्वी के ऊपरीपर्यावरणमेंविद्यमान 'ओजोन' नामकगैससमस्तप्राणियोंतथापेड़–पौधों के अस्तित्वकोबनाये रखने के लिए आवश्यक है। यह ओजोनगैस इस धरतीपरप्राणियों के जीवन के लिए एक ऐसा रक्षा–कवचहै; जिसकेबिनावे एक क्षणभीजीवितनहींरहसकते। इसे पृथ्वीपरसमस्तप्राणियों के लिए ईश्वर का वरदानमानतेहुए ब्राउनकहतेहैंकि– ''ओजोनगैस की पतररचयिता द्वारापहले से सोच–समझकरकियेगयेकार्य का महानप्रमाणहै।क्याकोई एक ऐसीदीवारजोप्रत्येक प्राणी कोमृत्यु से बचातीहै—————— योजना का एक प्रमाणदेतीहै।''

12.14 उद्देश्यमूलकप्रमाण का मिल एवंकेअर्ड द्वारा खण्डन

मिल के अनुसाररचनामूलकतर्क से केवलसीमितरचनाकार का अनुमानहोताहै।इससे धर्ममेंस्वीकृतईश्वर की सत्तासिद्ध नहींहोती।

केअर्ड ने कहाहैकिसृष्टि एक आत्मव्यवस्थितप्रणाली या जैविकसंगठनहै।जोअपनेआन्तरिकनियमों से विकसितहोरहीहै। यह विचारकिसीआनुभाविक–विधि या प्रयोजनवादीअनुमान के द्वाराप्राप्तनहींकियाजासकता।सीमितदृष्टि से असीमित का अनुमानलगानासंभवनहींहै।जोईश्वरप्रयोजनमूलकतार्किकअनुमान से सिद्ध होताहै; वह एक अपूर्णईश्वरहै।

12.15 उद्देश्यमूलकप्रमाणपरडेविड ह्यूम की टिप्पणी

डेविड ह्यूम का कहनाहैकिप्रत्येकविचारकको इतना मसाला मिल जाताहैकिवहअपनीकल्पनाकोअनेकप्रकार की प्राक्कल्पनाओंमेंदौड़ाये।अनीश्वरवादीकहेगाकिविश्वमेंकोईविचारपूर्णव्यवस्थानहींहै। यदिविचारपूर्णव्यवस्थाहोती; तोव्यर्थ की बर्बादी, मूल्यों का हनन, रोग,विप्लवआदिअशुभक्योंहोते?

12.16 निष्कर्ष

इस प्रकारजितनेउद्देश्यमूलकतर्कदियेगयेहै; उनकीवैकल्पिकव्यवस्थाभीसंभवहै। यदितार्किक रुप से दियेगयेय सभीप्रमाणसहीनहींहै; तोइससे यह नहींहै।समकालीनदार्शनिकहास्पर्स के अनुसार ''A Proved God is no God'' यह कथनईश्वर के अस्तित्व के विषय मेंउचितमानाजासकताहै। यह कथनउसीप्रकारहैजैसाभारतीय दर्शनमेंबौद्धों ने मानाथाकिजिसकाकोईआधार या सीमा न हो; उसेतर्क से सिद्ध नहींकियाजासकता।वहकेवलमानव की कल्पनाहै।

ग्रीकदार्शनिकजेनोफिनीज ने भीबहुतपहलेहीकहाथाकि– ''यदिबैलों, घोड़ों एवं शेरों के हाथमनुष्य के समानहोतेऔर उन हाथों से वेचित्र बनासकते; तोवेईश्वरकोक्रमशः बैल, घोड़े एवं शेर के रुप मेंचित्रित करते।''

निष्कर्षतः यह कहाजासकताहैकि यद्यपि प्रयोजनमूलकप्रमाणभीपूर्णरुपेणईश्वर के अस्तित्वकोसिद्ध करनेमेंअसफलरहाहै; फिरभीसभीमनुष्योंकोआकर्षकलगताहै।समस्तविज्ञानहमेसृष्टिकर्त्ता की धारणा की ओरलेजातेहैं। यहीकारणहैकिप्रयोजनमूलकप्रमाणपर टिप्पणी करतेहुए हास्पर्सकहतेहैंकि– ''यह तर्कईश्वर की सत्ताहेतुप्रस्तुतअन्य सभीतर्को की अपेक्षा अधिकलोकप्रिय है।''

12.17 सारांश

प्रयोजनमूलकप्रमाणकोउद्देश्यमूलक युक्तिअथवासंरचना का तर्कभीकहतेहै।प्रयोजनात्मक युक्तिविश्वमूलकप्रमाण का हीविस्तारहै।विश्वमूलकप्रमाणऔरउद्देश्यमूलकप्रमाणदोनों का प्रस्थानबिन्दुविश्व या प्रकृतिहै।ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के लिए दियागयाप्रयोजनमूलकप्रमाणविश्वको एक व्यवस्था या योजना के रुप में देखताहैऔरईश्वरको इस व्यवस्था का व्यवस्थापकमानाहै।सभीप्रकारदार्शनिकचाहेंवेआस्तिकहो या नास्तिकहोविश्वमेंनिहितअनूठीव्यवस्था, सुविन्यास एवंसामंज्जस्य को देखकर एक ऐसेईश्वर की रचनाकार के रुप मेंपरिकल्पनाकरतेहैंजोअपरिमितबुद्धिवालाहीहोसकताहै।विश्व के कण–कणमेंव्यवस्था देखकरलोगअनायासहीमंत्रमुग्ध होजातेहैंऔरभावतिरेकमेंअपरिमितबुद्धि वालेशिल्पकार के रुप मेंईश्वर की सत्ताकोस्वीकारकरलेतेहैं।सरलताअनुकूलताऔरपरस्परअभियोजन के कारण यह प्रमाणअपनेआरम्भिककाल से लेकरआजभीआकर्षण का केन्द्रबनाहुआहै। इस प्रमाण की महत्ताकेवलदार्शनिकों ने हीनहींअपितुवैज्ञानिको ने भीइसकीमहत्ताकोस्वीकारकियाहै।उद्देश्यमूलकप्रमाण यह सिद्ध करताहैकिईश्वरविश्वमेंपायेजानेवालेसभीप्रकार के सद्‌गुणों एवंमूल्यों का संरक्षकहै।उद्देश्यमूलकप्रमाण यह स्पष्टकरताहैकिविश्वमेंसर्वत्र अनुभूत योजना, सामंज्जस्य औरसंगठन एक अपरिमितबुद्धि वालेरचयिता की ओरसंकेतकरताहै, जिसे धर्मपरायण व्यक्तिईश्वरकहताहै।

12.18 प्रश्नबोध

1. ईश्वर के अस्तित्व के लिए दियेगयेउद्देश्यमूलकप्रमाण का विवेचनकीजिए।
2. क्या यह विश्व एक अपरिमितबुद्धि वालेशिल्पकार का अभिकल्पहै? विवेचनाकीजिए।
3. विश्वमेंपायीजानेवालीसुव्यवस्थित योजनाअपरिमितबुद्धि वालेईश्वर की सत्तासिद्ध करतीहै।व्याख्या कीजिए।

12.19 उपयोगीपुस्तक

1. समकालीन धर्मदर्शन– डॉ0 याकूबमसीह
2. धर्मदर्शन की मूलसमस्याएँ– डॉ0 वेदप्रकाशवर्मा
3. धर्मदर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन – डॉ0 शिवभानु सिंह

इकाई–13 नैतिक युक्ति

13.0 उद्‌देश्यः

13.1 प्रस्तावना :

13.2 आलोचना :-

13.3 निष्कर्ष -

----000----

13.0 उद्‌देश्यः

प्रस्तुत ईकाई में नैतिक युक्ति का विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए दिये गये विभिन्न तर्को का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने से न केवल इस बात का ज्ञान होगा कि यह उस परम सत्ता ईश्वर को सिद्ध करने में कहाँ तक सफल हो पायी है बल्कि नैतिकता के विभिन्न प्रतिमान मनुष्य के लिए किस हद तक लाभकारी है।

13.1 प्रस्तावना :

ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए अनेक प्रमाणों में नैतिक युक्ति भी एक युक्ति है कुछ दार्शनिकों ने नैतिक युक्ति के माध्यम से ईश्वर की सत्ता प्रमाणित करने का प्रयास किया, यह युक्ति अनुभव पर आश्रित है जिसमे नैतिक अनुभूति के आधार पर ईश्वर की सत्ता प्रमाणित किया गया है। भारतीय दर्शन में गौतम, वात्स्यायन आदि नैयायिकों तथा अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक शंकर ने इस युक्ति का समर्थन किया है। पाश्चात्य दर्शन में इस तर्क को सुत्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय महान जर्मन समीक्षावादी दार्शनिक - इमैनुअल काण्ट को दिया जाता है।

जिन्होंने सत्तामूलक, सृष्टिमूलक, तथा प्रायोजनमूलक युक्तियों का खण्डन करने के उपरान्त नीति परक युक्ति की स्थापना करते हुए नैतिकता की पूर्वमान्यता के रूप में ईश्वर की सत्ता को प्रतिपादित किया। उनकी निम्न युक्ति उनकी भावनाओं को संप्रेषित करती है सिर के ऊपर तारागणों से आच्छादित आकाश पर और हृदय पट पर लिखे गये नैतिक आदेश पर ध्यान देने से ईश्वर की अनुभूति हमें भाव विभोर कर देती है।”

काण्ट के बाद जे०एच० न्यूमैन ने "A Grammer of Assent" नामक पुस्तक में डब्ल्यू आर- सोर्ले " Moral Values" and the Idea of God" में जेम्समार्टिन्यू "Types " of Ethical Stories and "The Study of Religions मे तथा एच. रैशउल ने " The Theory of Gad and Evil" नैतिक युक्ति का समर्थन किया। समकालीन विचारको में जान वेली ने The Interpretation of Religion में डी० एम. वेली ने Faith in God में To एच ०जे० बेटन "The Modern Predicament "मे इस प्रमाण को एक नवीन आयाम प्रदान किया। नैतिक अनुभूति के समर्थन में कान्ट का मत काफी प्रचलित रहा है। उनका मानना है कि केवल दो तथ्य हमारी बुद्धि में सदैव सराहना, आश्चर्य एवं निस्तब्धता के भाव उत्पन्न करते है।

ये दो तथ्य है- ग्रहो नक्षत्रों से युक्त महान आकाश तथा आन्तरिक नैतिक अनुभूति । विशाल आकाश एवं नैतिक बोध दोनो ही हमारी चेतना को अत्यधिक प्रभावित करते है। मानव अपने आन्तरिक जीवन में स्वतन्त्रता का अनुभव करता है। संकल्प स्वतन्त्र प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव के विषय है। अपने निजी अनुभव ये व्यक्ति निरन्तर उच्च मूल्यों की प्राप्ति के लिए निर्णय लेता है। इन निर्णयों में व्यक्ति को नैतिक बाध्यता का बोध होता है। उसकी अन्त: चेतना में यह तथ्य / धारणा दृढ़ होती है कि उसे अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। कर्तव्य पालन न करने पर उसकी अन्तरात्मा में ग्लानि, क्षोभ तथा आत्म मर्त्सना का बोध होता है।

यह नैतिक अनुभूति परिणाम या प्रयोजन से निर्धारित नहीं होता बल्कि यह सभी प्रलोभन एवं स्वार्थ से स्वतन्त्र होती है। यह एक निरपेक्ष अनुभूति होती है जो बाह्य अथवा वास्तविक परिणाम हेतु हुए भी हमारी नैतिक चेतना हमें सत्य बोलने अथवा अन्य सदाचरण करने के लिए प्रेरित करती है। काण्ट के मत में नैतिकता का मूलसार "कर्तव्य के लिए कर्तव्य" की भावना में निहित है यथार्थ परिणाम अथवा दुष्परिणाम से उसका कोई सम्बन्ध नही।

किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है क्या वास्तविकता एवं नैतिक बाध्यता एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हो सकती हो? क्या बाहय तथ्य एवं नैतिक बाध्यता एक ही सत्य अथवा वास्तविकता के दो रूप नहीं ? यदि आन्तरिक नैतिक चेतना का क्षेत्र वास्तविकता से सर्वथा पृथक है तो नैतिकता संभव नहीं हो सकती। मानव चेतना के क्षेत्र को वास्तविकता से पूर्णतः भिन्न मानने पर हमें विचारों के जगत को बाहय एवं वास्तविक जगत से भिन्न मानना पड़ेगा। तथा इसी प्रकार वैज्ञानिक विचार भी वास्तविकता से रहित हो जायेंगे। वस्तुतः यह सन्देहवादी दृष्टिकोण सिद्धात के रूप में संभव हो सकता है इसे व्यवहार के रूप में नहीं अपनाया जा सकता।

लेकिन यदि हम यह स्वीकार करते है कि तथ्यात्मक एवं आनुभविक जगत एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है अथवा दोनों एक ही वास्तविकता के दो पक्ष है तो हमें यह भी मानना होगा कि नैतिक जगत बाह्य जगत के समान ही वास्तविकता के स्वरूप का घोतक है। ज्ञान के रूप में टेबल, कुर्सी आदि तथ्यों के बोध से भिन्न नहीं।

काण्ट के मतानुसार नैतिक व्यवस्था पूर्णतः निरपेक्ष है एक निरपेक्ष आदेश के रूप में व्यक्ति को नैतिक बाध्यता का अनुभव होता है। नैतिक बाध्यता पूर्ण अनुभूति यह प्रदर्शित करती है कि व्यक्ति वास्तव में नैतिकता का पालन कर सकता है। असम्भव के बारे में बाध्यता अक्या अथवा अवश्य करना चाहिए को भावना उत्पन्न नही हो सकती-

- "हमे धूम्रपान का त्याग करना चाहिए" का अर्थ है कि हमें धूम्रपान का त्याग कर सकते है। सामान्यता यह नही कहा जा सकता कि 'हमें हृदय की गति को कोरना चाहिए। संकल्प स्वतन्त्र नैतिक बाध्यता की मूल आवश्यकता है। काण्ट के मत में सम्पूर्ण नैतिकता तीन मान्यताओं पर आधारित है- संकल्प स्वतन्त्र, ईश्वर की सत्ता तथा आत्मा को आरता ।

काण्ट का कथन है कि मानव कल्याण एवं कुशलता प्रकृति और मनुष्य के लक्ष्य एवं संकल्प के समन्वय पर आश्रित है। स्वयं नैतिक नियमों में सदाचार एवं उसके अनुरूप सुख में आवश्यक सम्बन्ध के लिए कोई आधार नही होता क्योंकि दोनों एक ही जगत के भाग है। अतः व्यावहारिक तर्क हमे सम्पूर्ण प्रकृति के मूल कारण को स्वीकार करने को विवश करता है। यह मूल कारण प्रकृति से परे होते हुए सुख तथा नैतिकता में सम्बन्ध प्रदान करता है। इसी मूल कारण में प्रकृति की समन्वयता के नियम निहित है। यही वह आधार है जिससे बौध्दिक प्राणियों के संकल्प के नियमों एवं प्राकृतिक नियमों में एक रूपता स्थापित होती है। अत: परम शुभ अथवा सर्वोच्च लक्ष्य की संभावना के लिए परम सत-ही कल्पना आवश्यक है। यही प्रकृति एवं नैतिकता का मूल आधार है और यही धर्म मंत स्वीकृत ईश्वर। सर्वोच्च विश्व की संभावना की मान्यता वास्तव में सर्वोच्च्व शुभ की वास्तविकता की मान्यता है।

काण्ट यह स्वीकार करते है कि जिस नैतिक बाध्यता की वे बात करते है वह वस्तुत: आत्मनिष्ठ है। व्याख्या के नियम के रूप में इसे एक परिकल्पना माना जा सकता है, किन्तु व्यावहारिक प्रयोजन की दृष्टि से यह एक ऐसी श्रद्धा है जो शुद्धता तार्किक है क्योंकि यह शुद्ध तर्क से उत्पन्न होती है ईश्वर की मान्यता के बिना प्राकृतिक एवं नैतिक व्यवस्था में सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। नैतिक नियमों में निहित बाध्यता अथवा प्रभावशीलता को संभावना के लिए इन दोंनों का स्त्रोत एक ऐसे परम सत्' में मानना आवश्यक, जो वास्तविक, स्वतन्त्र एवं शुभ हो । परम शुभ को प्राप्त करने की नैतिक चेष्टा की समुचित व्याख्या ईश्वर की मान्यता के द्वारा ही संभव है।

विगत शताब्दियों में काण्ट के उपर्युक्त नैतिक तर्क का दार्शनिक चिन्तन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। टेलर, लाविश, साले आदि विचारकों ने इस तार्किक विधि को और विकसित किया है। हेस्टिंग्स रैरांडल ने नैतिक अनुभूति को स्वतन्त्रता एवं निरपेक्षता के आधार पर ईश्वर की सत्ता का अनुमान प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार नैतिक नियम में निहित वस्तुनिष्ठता, सार्वभौमिकता एवं स्वायत्तता की व्याख्या प्रकृतिवादी मान्यता के आधार पर संभव नहीं।

- निरपेक्ष तथा वस्तुनिष्ठ नैतिक नियम एक संदिग्ध सत्य है जड़ में तथा किसी व्यक्तिगत बुद्धि में भी इसकी सत्ता संभव नहीं। 'पूर्ण बुद्धि' की मान्यता के आधार पर ही नैतिकता संभव है। यही पूर्ण बुद्धि' नैतिक आदर्शो का स्त्रोत एवं आश्रय है। यही मान्यता धर्म में ईश्वर के विश्वास के रूप में विकसित होती है यद्पि ईश्वर में विश्वास सभी प्रकार की नैतिकता का आधार नहीं किन्तु यह वस्तुनिष्ठ तथा निरपेक्ष नैतिकता की तार्किक पूर्वमान्यता अवश्य है। एक नैतिक आदर्श बुद्धि में संभव है जिसमें सम्पूर्ण वास्तविकता का उद्‌गम होता है। इस विश्वास को नैतिकता की पूर्वमान्यता कहा जा सकता है।

काण्ट ने स्वीकार किया है कि कर्तव्य-चेतना से प्रेरित होकर ही कर्तव्य का पालन करना मनुष्य के लिए अनिवार्य है, फिर भी नैतिकता के निरपेक्ष आदेश का पालन करने वाले शुभ संकल्प से परिपूर्ण मनुष्य को उसके शुभाचरण के अनुपात में आनन्द प्राप्त करना नैतिक दृष्टि से उत्कृष्ट मनुष्य का न्यायोचित अधिकार है जो उसे प्राप्त होना चाहिए। काण्ट का कथन है कि इस संसार में व्यक्ति के प्रज्ञावान (Rational) होने की कसौती है कि यदि सभी कुछ उसकी इच्छा या चाह के अनुसार हो तो उसे सुख प्राप्त हो। इसलिए मानव के मूल सिद्धन्त के अनुसार जिसमें शारीरिक पक्ष को जीवन के अन्तिम लक्ष्य से मेल रखना चाहिए- सुख अवश्य प्राप्त होता चाहिए।

- काण्ट ने वैसे यह स्पष्ट कर दिया है कि कर्तव्य परायणता तथा सुख प्राप्ति में कारण-कार्य सम्बध नहीं है- क्योंकि कर्तव्य परायणता मानव की परमार्थिकता पर और सुख प्राप्ति उसको प्रातिभासिकता पर निर्भर होती है काण्ट के अनुसार व्यावहारिक प्रज्ञा की मांग है कि शुभ तथा सुख दोनों के बीच समन्वय होना चाहिए। इन दोनों का समन्वय अपने आप नहीं हो सकता क्योंकि दोनों ये पर्याप्त विषयता है अतः दोनों का समन्वय ऐसी सर्वोत्कृष्ट सत्ता हो सकती है।, जिसने सम्पूर्ण विश्व को और मानव को ऐसी बुद्धि देकर बनाया है की वह सम्पूर्ण शुभ की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहे। यहीं सत्ता ईश्वर है।

इसी सन्दर्भ में प्रसिद्ध दार्शनिक जे० एस० कार्डिनल ने अपनी पुस्तक 'A Grammer of Assent" में कहते है कि नैतिक मूल्य एवं नियमों की प्रकृतिवादी व्याख्या नहीं हो सकती क्योंकि हमारी नैतिक भावनाओं का सम्बन्ध दृश्यमान विश्व से नहीं है, एक ऐसी सत्ता होनी चाहिए। जिसके प्रति हम उत्तरदायी होते है, अर्थात एम भय खाते है या फिर प्रार्थना करते हैं, इसलिए नैतिक अनुभवों का आधार अति प्राकृतिक सत्ता को होना चाहिए। यह अतिप्राकृतिक सत्ता ईश्वर है ।

डी० एम० बेली के अनुसार हमारी नैतिक चेतना का आधार ईश्वर में आस्था ही है। ट्रबल्ड मानते है कि नैतिक नियम व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ व निरपेक्ष होते हैं। इसलिए निरपेक्ष सत्ता, ईश्वर द्वारा ही उसकी व्याख्या संभव है। भारतीय चिंतन में नीति परक प्रमाण को कर्म सिद्धान्त के आधार पर स्वीकारा गया है। जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य

को उसके शुभ व अशुभ कर्मो से उत्पन्न धर्म व अधर्म को 'अदृश्य' कहा गया है, जिसके संचालक के रूप में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। उनकी मान्यता है कि ज्ञान व शाक्ति से परिपूर्ण ईश्वर ही सभी मनुष्यों को उनके शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार एक निष्पक्ष न्यायाधीश की भांति सुख-दुःख दे सकता है। इसलिए ईश्वर का होना आवश्यक है शंकराचार्य भी मानते है कि अदृष्ट अचेतन है इसलिए चेतन शक्ति रुपी ईश्वर की आवश्यकता रहती है।

13.3 आलोचना :-

अभी तक हमने नीति परक प्रमाण के स्वरूप तथा उसके कुछ प्रमुख समर्थकों के मत की व्याख्या की है। अब इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है कि यह प्रमाण ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने में कहाँ तक सफल रहा है ?

यह सत्य है कि कुछ भारतीय तथा पाश्चात्य दार्शनिक ईश्वर सम्बन्धी विश्वास के लिए इस प्रमाण को बहुत महत्व देते है, परंतु फिर भी वास्तव में अन्य प्रमाणों की भाँति यह प्रमाण भी तर्क संगत रूप से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं कर पाया। इस प्रमाण के विरुद्ध भी अनेक आपत्तियाँ उठायी गयी है जो निम्नांकित है।

1. काण्ट द्वारा नैतिक युक्ति के समर्थन में दी गयी युक्तियाँ भी आलोचना से नहीं बच सकी। आस्था के द्वारा हम यह मान लेते है कि शुभ संकल्प तथा आनन्द के लिए ईश्वर का होना आवश्यक है किन्तु तर्क संगत रूप से नही कह सकते कि ईश्वर ही शुभ संकल्प के मनुष्य परम शुभ या परिणाम देने में समर्थ है। पुनः यह कहा जा सकता है कि यह तर्क केवल यही सिद्ध करता है कि नैतिक व्यवस्था के संचालन हेतु ईश्वर को होना चाहिए किन्तु इससे यही निष्कर्ष नही निकलता कि ईश्वर का अनिवार्य अस्तित्व है।

2. नीतिपरक प्रमाण के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि नैतिकता तभी बचेगी जब ईश्वर का अस्तित्व रहेगा। किन्तु जान हास्पर्स के अनुसार नैतिक मूल्यों बचाये रखने के लिए इसे ईश्वर से दूर रखना होगा। अर्थात - धार्मिक मान्यताएं तर्क के बजाय आस्था पर आधारित है।

अतः निश्चित तौर पर नैतिकता को धर्म से जोड़ना संभव नहीं है। इसी सन्दर्भ में नीत्से, अपनी पुस्तक "The Spoke of Jerthrust " में कहते है ' ईश्वर मर चुका है।" ईश्वर के मरने के साथ मनुष्य के लिए नयी सम्भावना का जन्म होना निश्चित है क्योंकि ईश्वर के होने की न तो कोई सैद्धान्तिक संभावना है न ही कोई व्यावहारिक उपयोगिता । मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियों को पनपने में सबसे बड़ी बाधा ईश्वर ही है।

उल्लेखनीय है कि नीत्से मानते है कि ईश्वर के उपस्थित रहने से मनुष्य में आत्मबल की कमी एवं भय व्याप्त है। वस्तुता नीत्से ईश्वर की अपेक्षा मनुष्य के महत्व को दर्शाना चाहते है। उन्होने व्यंगात्मक स्वर में कहा है कि 'ईसाईयत ने मनुष्य को भेड़ एवं ईश्वर को चरवाहा बना दिया तथा जब वर चरवाहा नहीं होगा तो मनुष्य जानवरों की श्रेणी से ऊपर उठकर मनुष्यत्व को पा सकेगा।

3. अस्तित्ववादी सार्त्र अपनी पुस्तक' अस्तित्ववाद तथा मानववादी में कहते है कि ईश्वर के नहीं होने पर एक ओर मनुष्य स्वतन्त्र व दूसरी ओर नैतिक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायेगा। दोस्तोवास्की के उदाहरण- यदि ईश्वर नहीं है तो सबकुछ अनुमत है। " के आधार पर साई नैतिकता की सार्त्र नैतिकता की प्रतिवादी तथा धर्म निरपेक्ष व्याख्या करते है

यदि ईश्वर नहीं है तो हमारे व्यवहार को वैध ठहराने के लिए कोई मूल्य या आदेश उपलब्ध नहीं हो सकेगा, जिससे मनुष्य अपने उत्तरदायित्व से पलायन करने बजाय स्वतन्त्रतापूर्वक नैतिक उत्तर दायित्व को स्वीकार करेगा।

4. इसी सन्दर्भ में हिक मानते है कि जो व्यक्ति ईश्वर को नैतिक नियमों का स्त्रोत मानते है व भूल जाते है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार नैतिक नियम बनते है। आधुनिक मनोविज्ञान ने यह सिध्द किया है कि हमारी अन्तस्थ चेतना का आधार सामाजिक जीवन है, फिर भी, काण्ट के तर्क को मानने से यह सुनिश्चित करना कठिनि हो जायेगा कि ईश्वरीय आदेश या ईश्वर समस्त नैतिकता क्या है ?

13.4 निष्कर्ष -

उपर्युक्त आलोचनाओं से स्पष्ट है कि ईश्वर को अस्तित्व को नैतिक तर्क से सिद्ध नहीं कर सकते, काण्ट अपनी पुस्तक - Critique of Pure Reason' में ईश्वर के अस्तित्व के लिए उपस्थित तर्कों को स्वयं अस्वीकार करते है उन्होंने लिखा है कि आस्था को बनाये रखने के लिए ईश्वर विषयक तर्को का खण्डन अपरिहार्य है, तथावि नैतिकता के सन्दर्भ एवं स्त्रोत की खोज में यह युक्ति महत्वपूर्ण हो जाती है।

............0000............

इकाई–14 धार्मिक अनुभूति सम्बन्धी युक्ति

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 समीक्षा

14.3 निष्कर्ष

------0000----

14.0 उद्देश्यः-

प्रस्तुत इकाई में धार्मिक अनुभूति संबंधी युक्ति के माध्यम से ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के लिए तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। किंतु अन्य प्रमाणों सृष्टि, मूलक प्रयोजनमूलक आदि की तरह यह प्रमाण भी आलोचना नव से अलग न रह सका। फिर भी अनेक पक्षों में इस युक्ति का महत्व भी उल्लेखनीय रहा है

14.1 प्रस्तावनाः-

धर्मशास्त्र तथा धर्म में धार्मिक अनुभव का विशिष्ट स्थान है तथा इसका प्रयोग व्यापक अर्थों में किया जाता है। इसके अंतर्गत रहस्यानूभूत श्रुति प्रकाश तथा अयौक्तिक की अनुभूति को भी समाविष्ट किया जाता है। ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए उनके धर्म दार्शनिकों एवं ईश्वर वादी दार्शनिकों ने धार्मिक अनुभूति का आश्रय लिया है संत ब्लाटिनस से लेकर विलियम जेम्स तथा डब्ल्यू.टी. स्टेस तक की ईश्वरवादी दार्शनिकों, रहस्यवादियों संतो पैगंबरों की एक लंबी श्रृंखला है जिन्होंने विशिष्ट धार्मिक अनुभूति अलौकिक अंत अनुभूत तथा दिव्य अनुभूति के आधार पर ईश्वर की सत्ता को प्रदर्शित किया है। समकालीन धर्म दार्शनिकों तथा विचारको में भी अंडर हिल्स, जॉन्स हेनरी, बर्गसा, एडोल्फ ,ऑटो, जानबेली, तथा रिचर्ड नेश्वू आदि दार्शनिकों ने धार्मिक अनुभूति के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

अनेक धर्मदार्शनिक में रहस्यायनुभूति को धार्मिक अनुभूति की चरम परिणति मानते हुए इसे ईश्वर की साक्षात अनुभूति का प्रबल साधन मानना है। रूढ़िवादी ईसाई एवं इस्लाम धर्म के समर्थक इस प्रकार की अनुभूति का समर्थन नहीं करते क्योंकि इसमें भक्त ईश्वर के साथ आत्मसात करता हुआ माना जाता है वहीं इसके विपरीत कुछ दार्शनिकों जैसे इब्लिन, अंडरहिल एफस इत्यादि ने रहस्यात्मक अनुभूति को ईश्वर के साक्षात्कार का सशक्त साधन माना है। विभिन्न युगों तथा देशों में बहुत प्राचीन काल से अनेक धर्म परायण व्यक्ति इस प्रकार के ईश्वर विषयक प्रत्यक्ष अनुभव का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करते रहे हैं ईश्वर का अनुभव न होता तो निश्चय ही उन्हें उसका यह प्रत्यक्ष अनुभव कभी प्राप्त नहीं हो सकता था।

ईश्वर संबंधी अनेक प्रत्यक्ष अनुभव से यह सिद्ध होता है कि वास्तव में ईश्वर की सत्ता है। ईश्वर के अस्तित्व के विषय में धर्म परायण व्यक्ति अपना यह तर्क प्रायः इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं_मैंने ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया है, अतः मेरे पास इस विश्वास का पर्याप्त कारण है कि वास्तव में उसका अस्तित्व है। अर्थात अगर मैं यह कहूं कि मैंने ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव किया है पर उसका अस्तित्व नहीं है, तो यह कथन स्वातोत्याघाती होगा। इस प्रकार ईश्वर विषयक मेरा प्रत्यक्ष अनुभव संदिग्ध रूप से उसकी वस्तुगत सत्ता को प्रमाणित करता है।

डेविड एल्टन, ट्रबल्ड , एच. एच. फार्मर आदि दार्शनिको ने ईश्वर के अस्तित्व के समर्थन में अन्य तर्कों के साथ-साथ धार्मिक अनुभव संबंधी यह प्रमाण भी प्रस्तुत किया है। ये दार्शनिक इस तर्क को पूर्णतः सत्य तथा प्रमाणित मानते हैं। उदाहरण_ इस तर्क का पूर्ण रूप से समर्थन करते हुए ट्रबल्ड कहते हैं कि लाखों व्यक्तियों ने यह बताया है तथा अब भी बता रहे हैं कि उन्होंने ईश्वर को उसी प्रत्यक्षता एवं गहराई से जाना है जिससे वह अन्य व्यक्तियों तथा भौतिक वस्तुओं को जानते हैं।

यह तथ्य कि अनेक सभ्यताओं तथा अनेक युगों का प्रतिनिधित्व करने वाले बहुत से व्यक्तियों ने जिनमे बहुत बड़ी संख्या ऐसे मनुष्य की है जिन्हें सामान्यतः श्रेष्ठतम एवं सर्वाधिक बुद्धिमान मनुष्य माना जाता रहा है प्रत्यक्ष धार्मिक अनुभव का विवरण दिया है हमारे संसार के विषय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्यों में से एक है। उनके विवरण जो दावा करते हैं वह इतना विशाल है तथा इतने व्यापक रूप से प्रस्तुत किया गया है कि कोई भी दर्शन उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में यह समझना आवश्यक है कि हमारे समक्ष दो ही विकल्प रह जाते हैं इस प्रकार उदाहरण से यह स्पष्ट है कि ट्रबल्ड धर्म परायण व्यक्तियों के धार्मिक अनुभव को ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय प्रमाणमानते हैं

धार्मिक अनुभूति उन व्यक्तियों के लिए वास्तविक व प्रमाणित होती है जो तीस्ट आंतरिक अथवा धार्मिकता से ओत प्रोत रहते हैं। अनेक धार्मिक व्यक्ति ईश्वर का अनुभव होने का दावा करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को पागल अथवा मूर्ख नहीं माना जा सकता। उनके उपदेश एवं आचरण का समाज एवं संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। यदि ये मूर्ख अथवा पागल होते तो समाज के अग्रणी एवं संगठनकर्ता कैसे बनते? इन्हें धूर्त एवं आडंबरी भी नहीं कहा जा सकता। इनका जीवन सरलता, सौम्यता, गंभीरता एवं बौद्धिकता से युक्त रहा है।

धार्मिक अनुभूति' ही धार्मिकता की सर्वोच्च एवं अंतिम कसौटी है। यही धार्मिक विश्वास का आधार है। कोई भी धार्मिक सिद्धांत व्यावहारिक अनुभूति के बिना अधूरा एवं अप्रमाणिक है। तर्क अथवा विचार की अपेक्षा धर्म मुख्ता अनुभूति का विषय है। जिस प्रकार एक प्रशिक्षित वैज्ञानिक अथवा विशेषज्ञ को वैज्ञानिक प्रमाणिकता एवं ज्ञान के क्षेत्र में सर्वोच्च निर्णायक माना जाता है उसी प्रकार धार्मिकता के क्षेत्र में भी योग्य विशेषज्ञों को निर्णायक मानना चाहिए। धार्मिक मान्यताओं की प्रमाणिकता का ज्ञान हमें धार्मिक संतो योगियो तथा पैगंबरों से ही प्राप्त हो सकता है। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन एवं अनुभव में धर्म के सत्य को साक्षात्कार किया ईश्वर अणु, परमाणु आदि की सत्ता का सामान्य व्यक्ति को कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं होता धार्मिक अनुभूति के फलस्वरुप ईश्वर सम्बन्धी धार्मिक विश्वास केवल प्राकल्पना अथवा अनुमान नहीं रहते, बल्कि यथार्थ सत्य सिद्ध होते हैं। विवेकशील मनुष्य कोरे तर्कों की अपेक्षा वास्तविक अनुभूति से अधिक प्रभावित होते हैं।

धार्मिक अनुभूति के स्वरूप की बात अगर की जाए तो उसका वर्णन भक्ति साहित्य एवं धर्मग्रंथो में विशेषतया मिलता है। इसका ज्ञान हमें तीन प्रकार से होता है प्रथम अनुभव करता स्वयं अपनी अनुभूति के बारे में कथन करता है। दूसरे इसका वर्णन उन धार्मिक आत्मकथाओं में मिलता है जिनमें आंतरिक जीवन का वर्णन किया जाता है। समान्य कथनों

की अपेक्षा यह वर्णन पूर्ण एवं व्यवस्थित होता है। तीसरा स्रोत विभिन्न धार्मिक परंपराओं में उपलब्ध संहिताओं मंत्रो एवं प्रार्थनाओं में निहित है।

14.2 समीक्षाः-

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि इस ईश्वरवादी दार्शनिकों द्वारा प्रस्तुत किया गया धार्मिक अनुभव संबंधी उपर्युक्त तर्क वस्तुतः ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने में समर्थ है अथवा नहीं। यह सत्य है कि प्राचीन काल से ही बहुत से धर्मपरायण व्यक्ति इस तर्क की प्रभावशीलता और विश्वसनीयता में असंदिग्ध रुप से विश्वास करते रहे हैं परंतु ईश्वर की सत्ता के समर्थन में दिए गए अन्य तर्कों की भांति इस तर्क के विरुद्ध भी अनेक गंभीर आपत्तियां उठाई जा सकती हैं जिनमें से कुछ निम्न है।

उपर्युक्त विभिन्न विवरणों से यह पता चलता है कि धार्मिक अनुभव संबंधी प्रमाण के समर्थक धर्म परायण व्यक्तियों के धार्मिक अनुभव के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। यहां स्वभावता यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि धार्मिक अनुभव से उनका तात्पर्य क्या है ? इस प्रश्न का कोई दार्शनिक निश्चित रूप से उत्तर नहीं दे पाए हैं प्रायः यही कहते हैं की धार्मिक अनुभव प्रत्यक्ष अनुभव है जिससे ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है पर आक्षेप यह है कि प्रत्यक्ष अनुभव उसी वस्तु का प्राप्त होता है जिसका वास्तव में अस्तित्व है तथा अगर ईश्वर का वास्तव में अस्तित्व है तो उसे प्रमाणित करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि यह ईश्वर का अनुभव वस्तुत धर्मपरायण व्यक्ति को प्राप्त होने वाला केवल मानसिक अनुभव है जो केवल यही अनुभव करते हैं नीरीश्वरवादी नहीं। उदाहरण मानसिक रोग से ग्रस्त कोई व्यक्ति अपने कमरे में बैठे-बैठे भी भ्रम के कारण रेलगाड़ी या घोड़े के दौड़ने की ध्वनि का प्रत्यक्षता अनुभव करता है किंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता यहां वास्तव में रेल गाड़ी चल रही है या घोड़े दौड़ रहे हैं ठीक यही बात धर्मपरायण व्यक्तियों के ईश्वर अस्तित्व सम्बन्धी तारक में कहीं जा सकती है।

धर्म परायण व्यक्ति स्वयं कहते हैं कि उन्हें जो ईश्वर विषयक धार्मिक अनुभव प्राप्त होता है उसका वर्णन करना संभव नहीं है अर्थात यह अनुभव पूर्णता आत्मनिष्ठ है तथा वह किसी वाह्य वस्तु के ऐसी वस्तु पर ज्ञान का आधार नहीं हो सकता जो सामान्य परिस्थितियों में सभी मनुष्यों को उपलब्ध हो सके। ऐसी स्थिति में धर्म परायण व्यक्ति असंदिग्ध रूप से यह कैसे दावा कर सकते हैं कि उन्हें जो अवर्णनीय अनुभव प्राप्त होता है वह वास्तव में ईश्वर का अनुभव है यदि उनका धार्मिक सचमुच अवर्णनीय है तो उसके आधार पर तर्कसंगत रूप से यह दावा कैसे किया जा सकता है कि सचमुच विशेष वस्तु का अनुभव है? इन दोनों बातें पर स्वर विरोधी प्रतीत होती है जिन्हें तर्कसंगत रूप से एक साथ नहीं स्वीकार किया जा सकता है अतः यह तर्क युक्ति संगत रूप से ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित नहीं कर पाता।

ईश्वरवादी दार्शनिकों का यह दवा भी तथ्यपरक तथा तर्कसंगत नहीं है कि सभी धर्मपरायण व्यक्तियों का धार्मिक अनुभव समान रूप से ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव है जिसके आधार पर एक सर्वमान्य ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित किया जा सकता है।

प्राचीन काल से ही देखा जाता रहा है कि विश्व में विभिन्न धर्मो संस्कृतियों का इतिहास रहा है इसी विभिन्नता के कारण धर्मपरायण व्यक्तियों के ईश्वर विषयक धार्मिक अनुभव एक दूसरे से केवल भिन्न ही नहीं अपितु परस्पर विरोधी भी रहे हैं उदाहरण ईसाइयों का धर्म में ईश्वर को दयालु तथा प्रेममय बताया गया है वही यहूदियों का ईश्वर क्रोधी तथा प्रतिशोध लेने वाला बताया गया है इतना ही नहीं एक ही धर्म को मानने वाले व्यक्तियों में भी ईश्वर विषयक विचारों में अंतर देखने को मिलता है जैसे वैष्णो दर्शन विशिस्टाद्वैत में ईश्वर को सगुण व साकार तथा व्यक्तित्व संपन्न माना है वही शंकराचार्य ने ब्रह्म को निर्गुण निराकार स्वीकार किया है ऐसी स्थिति में हमारे सामने तर्कसंगत रूप से यह निर्णय करना संभव हो जाता है कि इन विरोधी मतों में से कौन सा मत सत्य है तथा कौन सा मिथ्या वस्तुता इस बात का निर्णय करने के लिए

हमारे पास कोई विश्वसनीय तथा वस्तु पर कसौटी नहीं है क्योंकि सभी धर्म परायण व्यक्तियों के ईश्वर विषयक धार्मिक अनुभव पूर्णता आत्मनिष्ट है अतः पूर्णता आत्मनिष्ट होने के कारण मनुष्यों का धार्मिक अनुभव न तो ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि करता है ना ही खंडन।

ईश्वरवादी दार्शनिकों का यह विश्वास है कि संसार में लाखों धर्मपरायण व्यक्तियों का ईश्वर संबंधी व्यापक अनुभव अ संदिग्ध रूप से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करता है क्योंकि ये सभी मनुष्य जिनमे बहुत से बुद्धिमान व्यक्ति भी सम्मिलित हैं भ्रम में नहीं हो सकते परंतु वास्तव में इन दार्शनिकों का यह विश्वास भी तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। इसका कारण है कि जब कुछ सिद्धांत अथवा विश्वास किसी परंपरा या संस्कृति के अनिवार्य अंग बन जाते हैं तो उन्हें स्वीकार करने के संबंध में केवल अशिक्षित व्यक्ति ही नहीं अपितु सुशिक्षित एवं बुद्धिमान व्यक्ति भी भूल कर सकते हैं। ऐसे सिद्धांतों तथा विश्वासों को साधारण अशिक्षित व्यक्तियों के समान ही ये सुशिक्षित तथा बुद्धिमान व्यक्ति भी तर्कों को अथवा प्रमाणों के बिना ही पूर्णतः स्वीकार कर लेते हैं। उदाहरण जब भारत में सती प्रथा प्रचलित थी तब बहुत से सुशिक्षित तथा सभ्य व्यक्ति भी पति की चिता के साथ पत्नी के जल जाने को सही मानते थे इस उदाहरण से स्पष्ट है कि अंधविश्वासों को स्वीकार करने में केवल अशिक्षित व्यक्ति ही नहीं बल्कि सुशिक्षित व्यक्ति एवं बुद्धिमान व्यक्ति भी भ्रम में हो सकते हैं धर्म परायण व्यक्तियों के ईश्वर विषयक विश्वास के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है इसके अतिरिक्त ईश्वर के स्वरूप तथा गुणों के विषय में धर्म परायण व्यक्तियों के भिन्न भिन्न तथा परस्पर विरोधी से भी हमारे उपर्युक्त कथन की ही पुष्टि होती है इस प्रकार यदि ईश्वरवादी दार्शनिकों के इस दावे को स्वीकार भी कर लिया जाए कि लाखों धर्म परायण व्यक्तियों को ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हुआ है तो भी उनके इस आत्मनिष्ट अनुभव को ईश्वर के अस्तित्व के लिए विश्वसनीय तथा वस्तुपरक प्रमाण नहीं माना जा सकता।

14.3 निष्कर्षः-

इस प्रकार धार्मिक अनुभव संबंधी प्रमाण के विरुद्ध उपर्युक्त सभी गंभीर आपत्तियां को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि अन्य प्रमाणों के समान ही यह प्रमाण भी तर्क संगत रूप से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने में पूर्णता असमर्थ है किंतु फिर भी धार्मिक अनुभूति पर आधारित यह तर्क अनेक कमियों से ग्रस्त होने के बावजूद धार्मिक दृष्टि से ईश्वरोपासना का सर्वश्रेष्ठ रूप है ईश्वर साक्षात्कार को महत्व देने से यह तर्क धर्म एवं धर्मशास्त्र महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

खण्ड–5 परम्परागत समस्या

इकाई–15 अशुभ की समस्या

इकाई की रुपरेखा–

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 अशुभमानव के संकल्पस्वातंत्र्य के दुरुपयोग का परिणाम है।

15.3 अशुभ की समस्यापरईसाई धर्मऔर मिल का दृष्टिकोण

116प्राकृतिकअशुभनैतिकअशुभ के लिए दण्ड मात्र है।

15.5 प्राकृतिकअशुभसफलतामेंसहायकहै।

15.6 अशुभ शुभ का मूल्य बढ़ाने के लिए अवश्य है।

15.7 अशुभअपूर्ण शुभहै।

15.8 अशुभअदृश्य अज्ञातजीवों के लिए आवश्यक है

15.9 अशुभअसत् या मिथ्याहै।

15.10 अशुभअनेकप्रत्ययोंकोसार्थकबनाताहै।

15.11 अशुभ की समस्या से सम्बन्धित समाधान का मूल्यांकन

15.12 अशुभ की समस्या का मानवीय बुद्धि से परेहोना

15.13 निष्कर्ष

15.14 सारांश

15.15 प्रश्नबोध

15.16 उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुतइकाई का उद्देश्य अशुभ की समस्यापरअशुभ की विश्वमेंविद्यमानताऔरईश्वरवादीसंकल्पना के अनुरुपईश्वर के अस्तित्वपर एक साथविचारकरनाहै। यदिईश्वर ने सृष्टि की रचना की हैऔवहसर्वशक्तिमान, शुभऔरपूर्णसत्ताहै; तोउसके द्वारारचितविश्वमेंअशुभनहींहोनाचाहिए था।इसलिए प्रस्तुतइकाईमेंप्रमुख रुप से विचारणीय तथ्य यह हैकिक्याविश्वमेंअनुभूतअशुभऔरईश्वरवाद के बीचपरस्परसंगतिऔरसामंज्जस्य संभवहै? अशुभऔरईश्वरवाद के बीचइसीसंगति एवंसामंज्जस्य हेतुविभिन्नदार्शनिकों ने अपने–अपनेविचारव्यक्तकियेहै; जिसका इस इकाईमेंमूल्यांकनकियागयाहैऔरविभिन्नदार्शनिकों के तर्क की युक्तिसंगततापरविचारकियागयाहै।

15.1 प्रस्तावना

विश्वमेंअशुभकिसी न किसी रुप मेंविद्यमानहैऔरईश्वरवादियों के अनुसारईश्वरहीसृष्टिअर्थात् विश्व का रचयिताहैतथावहसर्वशक्तिमान, पूर्ण एवं शुभसत्ताहै। यदिअशुभ की विद्यमानताऔरईश्वर के अस्तित्वपर एक साथविचारकियाजाए; तोइनदोनोंपरस्परसंगतिऔरसामन्जस्य नहींहोपाताहै।अनेक ऐसेदार्शनिकहैं, जिनलोगों ने ईश्वर के स्वरुप के साथसामंजस्य स्थापितकरने का प्रयासकियाहै।अशुभ की समस्याईश्वर के साथअशुभ के पायेजानेवालेविरोध के कारणहीउत्पन्नहोतीहै।अशुभ की समस्या का ईश्वरवादियों ने अपने–अपनेढंग से जो समाधानप्रस्तुतकियाहै; वह इस प्रकारहै–

15.2 अशुभमानव के संकल्पस्वातंत्र्य के दुरुपयोग का परिणामहै।

1. कुछदार्शनिकों ने अशुभ की समस्या के समाधान के लिए अपनेविचारव्यक्तकरतेहुए कहाहैकि– ''अशुभमानवसंकल्पस्वातंत्र्य के दुरुपयोग का परिणामहै (Evil is due to the misuse of human of free will)''

अशुभकोमानव के संकल्पस्वातंत्र्य का दुरुपयोगमाननेवालेदार्शनिक यह तर्कदेतेहैंकिमानव ने संकल्पस्वातंत्र्य का दुरुपयोगकिया; जिसकेफलस्वरुपअशुभ का विकासहुआ।ईसाई धर्म ने

अशुभकोमानवसंकल्प–स्वातंत्र्य का दुरुपयोगहीमानाहै।वेस्वतंत्रतापूर्वककिसी एक संकल्पकोचुननेमेंसमर्थहोसकेंअर्थात् या तोलोगईश्वरकोप्यारकरे या घृणा का प्रदर्शनकिया, जिसकेफलस्वरुपसंसारमेंअशुभव्याप्तहै।अतः अशुभकारणमानवहै, ईश्वरनहीं।

मिल ने भीअशुभकोमनुष्य के स्वतंत्रता के दुरुपयोग का हीपरिणाममानाहै।उन्होंनेकहाहैकि–''संसारमेंअशुभमनुष्य के दृष्टता के कारणउत्पन्नहोताहै।मनुष्य स्वतंत्र है, जिसकातात्पर्य यह हैकिवह 'शुभ' एवं 'अशुभ' दोनोंकार्योकोकरने के लिए स्वतंत्र है।इसलिए अशुभमनुष्य के स्वतंत्रता का अनिवार्यपरिणामहै।''

15.3 अशुभ की समस्यापरईसाई धर्मऔर मिल का दृष्टिकोण

परन्तुअशुभ की समस्या के सम्बन्ध मेंईसाई धर्म एवं मिल द्वारप्रस्तुतकाण्ट एवंबोसांकेप्रतिवादकरतेहुए यह विचारव्यक्तकियाहै– ''ऐसामाननाकिईश्वर ने मनुष्य कोसंकल्पस्वातंत्र्य तोदिया, किन्तुउसके समक्ष दोविकल्पनहींदिये। इस प्रकार का कथनअसंगतप्रतीतहोताहै; क्योंकिईश्वर ने मानवकोसंकल्पस्वातंत्र्य के साथहीदोविकल्पअवश्य रखेंहोंगे।इससेसिद्ध होताहैकिअशुभ की सृष्टिईश्वर ने मनुष्य कोसंकल्प स्वांत्र्य प्रदानेकरते समय ही की होगी।पुनश्चउपर्युक्त युक्तिईश्वर की सर्वशक्तिमान का भी खण्डनकरतीहै।क्याईश्वर ऐसा नही ंकर सकताथाकिमनुष्य अपनेसंकल्पस्वातंत्र्य का दुरुपयोग न करता? यदिवह ऐसाकरनेमेंअसमर्थथा, तोईश्वरकोसर्वशक्मिानकहनाभ्रामकहै। यदि यह मानलियाजाय किअशुभमानव के संकल्पस्वातंत्र्य के दुरुपयोग का परिणामहैतोभीइससेकेवलनैतिकअशुभ की हीव्याख्या होतीहै।प्राकृतिकअशुभजैसेऑधी, तूफान, बाढ़, अकाल, महामारीइत्यादि की व्याख्या नहींहोपातीहै।अतएवअशुभ की समस्या का दियागयावह समाधान– 'अशुभमानवसंकल्पस्वातंत्र्य के दुरुपयोग का परिणामहै' संतोषप्रद समाधाननहींप्रतीतहोताहै।

15.4 प्राकृतिकअशुभनैतिकअशुभ के लिए दण्ड मात्र है।

2. कुछविचारकों ने अशुभ के समस्या के समाधान के लिए यह तर्कदियाहैकि ''प्राकृतिकअशुभनैतिकअशुभ के लिए दण्डमात्र है। (Natural evil is punishment for moral evil)' इस प्रकारतर्कदेनेवालेविचारकों का कहनाहैकिईश्वर ने मानव की रचना

की है; किन्तुमानव ने ईश्वर के आदेशों का पालन नही ंकर सका।ईश्वरने मानव की सृष्टिकरने के पश्चात् उसकेलिए कुछनैतिकनियमोंकोभीबनायाथा, जिननियमों का मानव ने उल्लंघनकिया, जिससेक्रोधितहोकरईश्वर ने मनुष्य कोदण्डितकरने की भावना से अशुभ का निर्माणकिया।भूकम्प, बाढ़, भूख, अभावआदिईश्वर के द्वाराहीमनुष्य कोकष्टदियेजाने के लिए विश्वमेंप्रायोजितकियेजातेहैं।महात्मागॉधी ने इसीविचार का समर्थनकरतेहुए यह कहाथाकिप्राकृतिकअशुभछुआछू की भावना के कारणहैऔरउन्होंनेभारतमें 1934 के भूकम्पकोप्राकृतिकअशुभ के रुप मेंईश्वर द्वारदण्डितकरने के लिए प्रायोजितमानाथा।उनका यह कहनाहैकि 1934 का भूकम्प इस बात का प्रमाणहैकिईश्वरहमलोगों से असंन्तुष्टहै।

परन्तुअशुभ की समस्या के समाधान के लिए दियागया यह समाधानकि 'प्राकृतिकअशुभनैतिकअशुभ के लिए दण्डमात्र है' युक्तिसंगतनहींलगताहै। यदिप्राकृतिकअशुभनैतिकअशुभ के लिए दण्डस्वरुपहे; तोप्राकृतिकअशुभ से केवल उन प्राणियोंकोही क्षतिपहुँचनीचाहिए थी; जिन्होंनेनैतिकअशुभकोअपनायाहै।इसकेविपरीतप्राकृतिकअशुभ से उन व्यक्तियोंकोभीहानिहोतीहै,जोनिर्दोषऔरसत्यनिष्ठहै।प्रश्न यह उठताहैकि यदिईश्वरकरुणा का महासागरतथाप्रेममय है; तोक्यावहअपनेसन्तानकोकष्ट दे सकताहै? ऐसीस्थितिमेंप्राकृतिकअशुभकोनैतिकअशुभ के रुप मेंदण्डकहनाउचितनहींप्रतीतहोताहै।

15.5 प्राकृतिकअशुभसफलतामेंसहायकहै।

3. 'प्राकृतिकअशुभसफलतामेंसहायकहै (Natural evil is conductive to sucess) इस रुप मेंअशुभ की समस्या का समाधानप्रस्तुतकरनेवालाविचारकों का यह माननाहैकि 'यदिविश्वमेंअशुभ न होता, तोविश्व का विकासअवरुद्ध होजाता।अशुभ की महत्ताकोस्वीकारकरतेहुए डॉ0 राधाकृष्णन ने कहाहैकि–''विश्वअपूर्णता के अभावमेंस्थिरहै, रिक्तहै, अप्रगतिशीलहै।'' वेतर्कदेतेहैंकिजब एक बच्चाचलनासीखताहैऔरअन्ततः वहचलनासीख लेताहै।गिरनाउसकेचलने का साधकहै। दुःख एवंअभाव की अनुभूतियाँ हीमानवकोआत्मविकास के पथपरलेजातीहैं।भूख की पीड़ा से त्रस्त होनेपरमानवभोजन

की खोजकरताहैऔरउसेग्रहणकरने के बादसुख की अनुभूतिकरताहै।अतएवमानव के प्रगतिमेंअशुभसहायताप्रदानकरताहै।

प्रसिद्ध अंग्रेजकविजॉनकीट्स ने संसारकोआत्मनिर्माण की घाटीमानाहै।कीट्स का माननाहैकिआत्मा के निर्माण के लिए दुःख एवंसंकट के संसार का होनाआवश्यक है यदिविश्वमें 'अशुभनहींहोते; तोकठिनाईयोंकोदूरकरने का अवसरनहींप्राप्तहोतातथाहमारेचरित्र का विकासनहींहोता। प्रो0 ब्राइटमैनने ठीकहीकहाहै–''चरित्र का विकासकठिनाईयों द्वाराहीसम्पन्नहोताहै।संवेदना का उद्भव दुःख से हीहोताहै।''

प्रो0 डी0एस0एडवर्ड ने ब्राइटमैन के विचार का समर्थनकरतेहुए कहाहैकि–''ऐसास्वर्गजहाँ कण्टकहीनगुलाबहीगुलाबहो, जहाँ दुःख–शोकरहित माधुर्यही माधुर्यहो, मानवसमुदाय को इतना सारहीनप्रतीतहोताहैकिवहकिसीलम्बीअवधि तक शायदहीउसकाआनन्दउपभोगकरसके।'' मैकग्रेगर का यह कहनाहैकि–अशुभहमारेलिए प्रेरणाप्रदानकरताहै।अशुभमानवीय जीवन के लिए वरदानस्वरुपहै।अशुभ का अनुशासन एवंशिक्षा की दृष्टि से महत्वहै।अतएव यह अच्छीबातहैकिसंसारमेंअशुभहै।अशुभ की समस्या के समाधान के लिए प्रस्तुत इस प्रकार के तर्क का समर्थनकरनेवालेईश्वरवादियों ने यह मानाहैकिअशुभ शुभ के उद्भव का कारणहै।

परन्तुअशुभ की समस्या के समाधान के लिए दियागयाउपर्युक्त मत भीउचितनहींप्रतीतहोताहै।अशुभ के कारणकभी–कभीमानव का पतनहोनेलगताहै। एक आदर्शव्यक्तिअशुभ के कारणक्रोधीपतित, उदासीन एवंनिराशावादीहोजाताहै।अतएवअशुभव्यक्तिचरित्र मेंसर्वथासुधारनहींलासकता। यह मानना युक्तिपूर्णनहींलगताहैकिअशुभ से सर्वथाप्रेरणामिलतीहै।अशुभ के प्रभाव के कारणमानवअमानवीयता का परिचय देनेलगताहैतथा अधार्मिकहोजाताहै।प्रायः अशुभ से प्रभावितव्यक्तिको देखा गयाहैकिवह अध्यात्म से विमुख होजाताहै, निष्क्रियताकोप्रश्रय देनेलगताहै।औरइनसबकापरिणाम यह होताहैकिउसकीप्रगति रुक जातीहै।पुनश्च यह भीप्रश्नउठताहैकिईश्वर दुःखों एवंकठिनाईयोंजैसेसाधनको शुभ की प्राप्ति के लिए

क्योंउत्पन्नकरताहै? क्याईश्वर कोईसरलसाधनकोउत्पन्नकरनेमेंअसमर्थथा। ऐसीस्थितिमेंईश्वरकोसर्वशक्तिमान कहनाभ्रामक है।

15.6 अशुभ शुभ का मूल्य बढ़ाने के लिए अवश्य है।

कुछविचारकों ने अशुभ की समस्या का समाधानप्रस्तुतकरतेहुए यह तर्कदियाहैकि– ''अशुभ, शुभ के मूल्य को बढ़ाने के लिए आवश्यक है।'' (Evil is needed as contrast to good) इस प्रकार का तर्कदेनेवालेविचारकों का यह कहनाहैकिविश्वमेंसुन्दरता का महत्वइसलिए है; क्योंकिसंसारमेंकुरुपताभीहै।प्रकाश का महत्वकेवलइसलिए है; क्योंकिसंसारमेंअन्धकारभीहै।वास्तविकता यह हैकिअशुभ शुभ के लिए पृष्ठभूमितैयारकरताहै।विश्व की प्रत्येकवस्तु यदि शुभहोतीतोसंभवतः शुभकोपरिभाषितकरना एक दुरूहकार्यहोता।अशुभ शुभ का विरोधीहैऔर शुभ के महत्वकोप्रकटकरताहै।अशुभ के अभावमें शुभ का मूल्यांकनकरनाकठिनहीनहींअसंभवसाजानपड़ताहै।अतः अशुभ शुभ के मूल्यांकन का मानदण्डहै। प्रो0 सी0ई0 एम0 जोडअशुभ की समस्या के समाधान के लिए इस तर्क का समर्थनकरतेहुए कहाहैकि– ''अशुभ शुभ का आवश्यक पूरकहै।लोगकहतेहैंकिजिसप्रकारमनुष्य के लिए छायाआवश्यक है, उसीप्रकार शुभ के लिए अशुभआवश्यक है।''

अशुभ शुभ का विरोधीहै' इस समाधानकोइसलिए भीनहींस्वीकारकियाजासकताहै; क्योंकि यदिअशुभ का निर्माण शुभ का विरोध करने के लिए हुआहै, तोभीइतनीप्रचुर मात्रा मेंअशुभ के रहने की क्याआवश्कयताहै? क्यासुख का विरोध करने के लिए इतने अधिक दुःख की आवश्यकताथी? क्याज्ञान का विरोध करने के लिए इतने अधिकअज्ञान की आवश्यकताथी? प्रो0 ब्राइटमैन ने इस तथ्य का उल्लेख करतेहुए कहाहैकि– ''शुभ का विरोध करने के लिए विश्वमेंअत्यधिकअशुभहै।विरोध सम्बन्धी यह सिद्धान्तअशुभ का व्यापक मात्रा मेंविश्वमेंबनेरहने का औचित्य नहींसिद्ध करसकताहै।''

15.7 अशुभअपूर्ण शुभ है

अशुभअपूर्ण शुभहै (Evil is incomplete good)–प्रत्ययवादीदार्शनिकहेगल का कहनाहैकिविश्वमेंविद्यमानअशुभ अपूर्ण शुभहै। किसीभी वस्तु का आंशिक रुप असंगतलगताहै;

किन्तुपूर्ण रुप आकर्षकप्रतीतहोताहै।अपूर्णचित्र पर इधर–उधरपड़ेरंगो की छापकुरुपलगतीहै, किन्तुजबवहीचित्र पूर्णतैयारहोजाताहै; तोसुन्दर एवंआकर्षकलगताहै। जख्म ऑपरेशन के समय दर्ददेताहै, परबादमेंअच्छाहोजानेपरआरामदेताहै।

परन्तुअशुभ की समस्या का हेगल द्वाराप्रस्तुत समाधानउचितनहींप्रतीतहोताहै। उनके विचारकोतभीमानाजासकताहै; जबहम यह मानलेंकिभविष्य मेंपूर्ण शुभहीहोगा। इस प्रकारअपूर्णता से पूर्ण शुभ का अनुमानकरनाउचितनहींजानपड़ताहै।

यदि यह मानभीलियाजाए किअशुभअपूर्ण शुभहै; तो यह कहनाभी युक्तिसंगतहैकि 'शुभअपूर्णअशुभहै'। एक व्यक्तिजो शराब का सेवनप्रारम्भकरताहै, उसकेलिए शराबप्रारम्भिकअवस्थामेंजहाँ तकउससेसुख मिलताहै, शुभदिखताहै; किन्तु यह अपूर्णसुख है।वही शराबसम्पूर्ण जीवन की दृष्टि से अशुभ प्रमाणित होतीहै।फिर यदिसमष्टिस्वयं शुभहै; तोइसकेअवयवअशुभक्योंहै? यदिहमसमष्टि एवंउसकेअवयवदोनोंको शुभमानलेंतोकठिनाईहोगी।

15.8 अशुभअदृश्य अज्ञातजीवों के लिए आवश्यक है

कुछदार्शनिकों का यह माननाहैकि– 'अशुभ, अदृश्य अज्ञातजीवों के लिए आवश्यक है' (Evil is necessary for invisible and unknown creatures)– इस मत के समर्थकदार्शनिकों का यह माननाहैकिसंसारमेंकुछ ऐसेजीवहैं; जिनकानिर्वाहअशुभ से होताहै, जैसेभूत–प्रेत, राक्षस पिशाचइत्यादिअनेकजीवहैं, जिनकाहमेंप्रत्यक्षीकरणनहींहोताहै, अशुभइनजीवों के लिए उपयोगीसिद्ध होताहै।

अशुभ की समस्या के समाधान के लिए दियागया यह समाधानसंतोषप्रद नही मानाजासकताहै। यह एक विवेकशीलमनुष्य कोस्वीकार्यनहींहोसकता;क्योंकि इसकाआधारकेवलविश्वासहै; तर्कबुद्धि नहीं। ऐसी स्थितिमें यह समाधानभीविवेकशीलव्यक्तिका संतुष्टकरनेमेंअसमर्थहै।

15.9 अशुभ असत् या मिथ्याहै

'अशुभअसत् या मिथ्याहै' (Evil is unreal)–भारतीय दर्शनमें अद्वैत वेदान्तियोंतथापाश्चात्य दर्शनमें निरपेक्ष प्रत्ययवादियोंऔर एकतत्ववादियों ने अशुभ की वास्तविकसत्त का ही खण्डनकियाहैतथाअशुभकोअसत् या मिथ्यामानाहै।भारतीय दर्शनमें अद्वैत वेदान्त मे ंतो ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ताकोमानागयाहैतथाब्रह्म से इतरजोकुछभीहैउसेअसत् या मिथ्याकहागयाहै।विवर्तवाद या प्रतिपादनकरतेहुए अद्वैत वेदान्तीकेवलकारण की हीसत्ताकोमानतेहैं।कार्य का विवर्त या आभासमात्र मानतेहैं।सम्पूर्णविश्वअशुभ रुप, आभास मात्र एवं मिथ्याहै। यह विश्वप्रपंचमात्र है। यह शुभ पर आरोपित अशुभ या मिथ्याहै। पारमार्थिक दृष्टि से न तोजगत् की सत्ताहैऔर न हीजगत में व्याप्त अशुभ की हीसत्ताहै।अशुभ की सत्ता केवल आभासमात्र है, वास्तविक नहीं।ब्रह्मात्मभाव की अनुभूतिहोने पर अशुभ के मिथ्यात्व का ज्ञानहोताहै।

कुछ ईश्वरवादी भी अशुभ के वास्तविक अस्तित्व का निषेध करतेहुए इस जगतमेंअशुभ की यथार्थ एवंवस्तु परकसत्ताकोअस्वीकारकिया हैतथा इसे भ्रममात्र मानाहै।इनदार्शनिकों का यह माननाहैकि जिसे हमअशुभकहतेहैं; वहहमारे संकुचितदृष्टिकोण का द्योतकहै, व्यापकदृष्टि से देखनेपरवह शुभसिद्ध होताहै। एक समय जिसे हमअशुभमानतेहैं, कालान्तरमेंवही शुभप्रतीतहोताहै। इसलिए ये ईश्वरवादी यह मानतेहैंकि इस जगतमें न केवल शुभ की हीवास्तविक एवं यथार्थ सत्ताहै।ब्रैडले ने अपनीपुस्तक 'Appearance and Reality' मेंलिखा है– ''अन्ततः समस्तसत्ता, विचारतथा भावना एक हीहोजातेहैं।अतः हम यह कह सकतेहैंकि इस ब्रह्माण्डमेंप्रत्येकवस्तुपूर्णतया शुभहै।''

बुद्धिवादी दार्शनिक लाइबनित्ज ने भी इस विश्वकोईश्वर की सर्वोत्तमकृतिमानाहै।उन्होंनेभीअशुभ की वास्तविकसत्ताकोनहींस्वीकारकियाहै।

परन्तुअशुभ की समस्या का समाधान यह कहकरकरना युक्तिसंगतनहींलगताहैकि–''अशुभअसत् या मिथ्याहै या अशुभ की कोईवास्तविकसत्तानहींहै'' विश्व का प्रत्येक प्राणी अशुभ का अनुभवकरताहैऔरप्रतिदिनइससेप्रभावितहोताहै।अतएवअशुभ के वास्तविकसत्ता का निषेध करदेना मात्र अशुभ के समस्या का समाधननहींहै। यदि यह मानभी

लिया जाय कि अशुभ भ्रममात्र है औरइसकी वास्तविक सत्ता नहींहै तोभी यह प्रश्न उठताहै कि विश्व के समस्त प्राणियों में यह व्यापक भ्रम किसनेउत्पन्नकिया? यदिईश्वर ने यह भ्रमउत्पन्न किया हैतो वह इसकेलिए उत्तरदायी है और यदि ईश्वर ने यह भ्रम उत्पन्न नहींकिया है; तोफिर कहाँ से उत्पन्न हुआ है और इसकी व्याख्या किस प्रकार की जाय? यदिईश्वरसर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान हैं; तो इस भ्रमको दूर करना चाहिए।

अशुभ की समस्या के इस समाधानको यदि मानभीलियाजाय, तोइसके द्वारानैतिकअशुभ की व्याख्या समुचित तरीके से नहीं की जासकती।नैतिकअशुभ को केवल भ्रम या मिथ्या कहकर इसके स्वरुप एवं इसकीउत्पत्ति की व्याख्या नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार यह सिद्धान्त दुःख निवारण विषकय मानवीय प्रयास का निरर्थक, अप्रासंगिकऔर अनावश्यक बना देता है। अशुभ या दुःख को भ्रममात्र मानने से मनुष्य के वे सभी प्रयास निरर्थक सिद्ध होतेहैंजोवह दुःख के निराकरण के लिए करताहै।वस्तुतः समस्त प्रकार के दुःखों के प्रतिमनुष्य को उदासीन करना न तो आपेक्षित है और न हीउचित प्रतीत होता है। अतएव अशुभ की समस्या को उपर्युक्त समाधान प्रतीत होता है। अतएव अशुभ की समस्या कोउपर्युक्त समाधान भी तर्कसंगत एवं युक्ति पूर्णनहीं लगताहै।

15.10 अशुभ अनेक प्रत्ययों को सार्थकबनाताहै।

'अशुभ अनेक प्रत्ययों का सार्थक बनाता है' (Evil gives meaning to many concepts) कुछविचारकों का यह कहना है कि अशुभअनेक भावनाओं एवं विचारों को जीवित रखता है। प्रेम, दया, क्षमा, सहानुभूति इत्यादि प्रत्ययों की सार्थकता अशुभ के ही कारण है। यदि कोई रोग ग्रस्त एवं असहाय न हो, तो सेवा–सुश्रुषा किस की होगी। अतएव अशुभ के कारण ही बहुत से प्रत्यय मूल्यवान बन जाते हैं। लाइबनित्ज का कहना है कि– ''जिस प्रकार चित्रकला एवं संगीत में विरोधी रंगों एवं ध्वनियों का प्रयोग उन्हें आकर्षक बनाने के लिए किया जाता है, उसी प्रकार जीवन को अधिक आकर्षक, व्यापक एवं महत्पूर्णबनाने के लिए अशुभ भी आवश्यक है।

परन्तु उपर्युक्त समाधान भी तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। यह तर्क कुछ ऐसा हीहैजिस प्रकार कोई कहे की सुव्यवस्थित समाज के लिए पुलिस की व्यवस्था आवश्यक है और इस व्यवस्था की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए यह भी आवश्यक हैकि समाज मेंजोकुछ ऐसेभी लोगहैंजो समाज विरोधी कार्य करते हैं। जैसे–चोरी, डकैती, लूटमार; उन्हें पुलिस समाज विरोधी कार्यों से रोकें।

15.11 अशुभ की समस्या से सम्बन्धित समाधान का मूल्यांकन

अबतक अशुभ की समस्या के समाधान के लिए जितने भी प्रयास किये गयेहैं, उनमेंकोई न कोई कमी अवश्य परिलक्षित होतीहै। अशुभ की समस्या के समाधान मेंपायी जाने वालीकमियाँको दृष्टिमें रखते हुए कुछ ईश्वरवादी विचारक ईश्वर के परम्परागत स्वरुप मेंही संशोधन करके इस समस्या का समाधान करने का प्रयास करते हैं।इन दार्शनिकों में विलियम जेम्स, एच0 रैशडल, ई0एस0 ब्राइटमैन,, पी0ए0 बर्टोकी, डी0ई0 ट्रब्लडआदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनदार्शनिकों ने ईश्वरकोपूर्णतया शुभमानाहै; किन्तुसर्वशक्तिमान नही मानाहै।

इनविचारकों का यह कहनाहै किईश्वर की भीसीमाहैऔर वहचाहतेहुए भीकुछकार्य करने में असमर्थहै। ईश्वर अशुभ का निराकरण करना चाहताहै, किन्तु ऐसाकरनेमें अक्षमहै। इस प्रकार के विचारकों का यह कहनाहैकि ''यह विश्वईश्वर की सर्वोत्तम रचना है अर्थात् इससेसुन्दर विश्व की रचना ईश्वरनहींकर सकताथा। ऐसे विचाराकों का यह कहना हैकिअशुभ के लिए ईश्वरको उत्तरदायी नहींमाना जासकता है।

ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का खण्डनकरतेहुए बर्टोकी ने लिखा है– ''मूलरुप से ईश्वर का हमारेअनुभव से भिन्नहैं उसके जीवन मेंभीचुनौती आनन्द तथा संघर्षविद्यमानहै।'' ट्रब्लड ने भीईश्वर की सर्वशक्तिमत्ताको स्वीकार नहींकियाहै।ट्रब्लड का कहनाहैकि– ''सर्वशक्तिमान शब्दबहुतहीअस्पष्टहै। यदिइसका अर्थकुछ भीकरने की क्षमताहै, तो यह व्यावहारिक दृष्टि से निरर्थकहै। बहुत समय से यह मानाजाता रहाहैकि ईश्वरतर्कशास्त्र के नियमों द्वारासीमितहै। दुःख उत्पन्नकरने वालीस्थितियों कोजन्मदियेबिनाईश्वर भीपरस्परनिर्भर व्यक्तियों के समुदाय की

रचना नही ंकर सकता। यदिसर्वशक्तिमान का अर्थ कुछभी करने की क्षमता है; तो निश्चय ही ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है।

परन्तु उपर्यूक्त रुप में अशुभ की समस्या का समाधान देने के प्रयास में ईश्वरवादियों ने एक प्रकार से ईश्वरवाद का ही परित्याग कर दिया है; क्योंकि सर्वशक्ति मत्ता से रहित ईश्वर एक सीमित ईश्वर है तथा सीमित ईश्वर धर्मपरायण व्यक्ति के आस्था का विषय नहीं बन सकता। एफ0 एस0 फेटे तथा एफ0आर0 टेनैन्ट जैसे ईश्वर वादियों ने उपर्युक्त धारणा की तीव्रआलोचना की है।फेरे ने दृढ़ता पूर्वक कहा है कि– ''यदि हम ईश्वर की पूर्णता की कोई सीमा स्वीकार कर लेते हैं तो ईश्वर की सम्पूर्ण धारणाही नष्ट होजाती है।'' एफ0आर0टैनेन्ट का भी यह माननाहैकि ''विश्व की बुराईयाँ ईश्वर की सीमाको प्रमाणित नहींकरतीहैं।''

ईश्वर के सर्वशक्तिमत्ता के निषेध का एक औरअर्थ यह भी निकल सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य शक्ति भी है जो उसकी इच्छा के विपरीत कार्य करती है। इस प्रकार की शक्ति को स्वीकार करना एकेश्वरवाद या ईश्वरवाद का खण्डन करना है। अतएव इस समाधान को अशुभ के समस्या का संतोषजनक समाधान नहीं माना जा सकता है।

कुछ विचारकों ने अशुभ की समस्या का कोई उपर्युक्त समाधान न मिलने के कारण यह कहना आरम्भ कर दिया किअशुभ की समस्याको समझना और इसका समाधान खोजना मानवीय शक्तियों के परे है; क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ, सीमित और ईश्वर के शाश्वत सत्य को समझने मेंअसमर्थहै। मध्यकालीन पाश्चात्य दार्शनिक आगस्टाइन का भी यह मानना है कि– ''मानव अनेक समस्याओं को समझने में असमर्थ है, अशुभ की समस्या भी उन्हीं समस्याओं में से एक है।''

15.12 अशुभ की समस्या का मानवीय बुद्धि से परेहोना

यद्यपि कुछ विचार कों का यह मानना है कि अशुभ की समस्या के समाधान के लिए किये जानेवाले समस्त मानवीय प्रयास निरर्थक हैं तथा इस समस्या को समझना मानवीय तर्कबुद्धि से परेहै; किन्तु मानव अपनी तार्किक शक्ति के द्वारा स्पष्ट रुप से निम्न दो कथनोंमें तार्किक व्याघात देख सकता है–

(1) ईश्वर सर्वशक्ति मानतथा परम शुभ या दयालु है और

(2) उसके द्वारा रचित विश्व में दुःख एवं दुराचार के रुप में अशुभहै।

उपर्युक्त दोनों कथनों के परस्पर विरोध के कारण ही अशुभ की समस्या उत्पन्न होती है। इसलिए यह कथन उचित नहीं है कि अशुभ की समस्या मानवीय तर्कबुद्धि के परेहै।

15.13 निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अशुभ की समस्या ईश्वर वादियों के लिए गम्भीर समस्या है और इसके समाधान के लिए जितने भी प्रयास किये गयेहैं उनमें कोई न कोई विसंगति अवश्य दिखायी पड़ती है। अतएव अशुभ को लेकर जो प्रमुख प्रश्न है वही अनुत्तरित बना रहता है कि अशुभ का निराकरण कैसे किया जाए और इस समस्या की व्याख्या कैसे की जाए? वास्तविकता यह है कि विश्व की रचना ही 'सत्य' एवं 'अनृत' के मिथुनीकरण से हुई है। इसलिए यदि विश्व है; तो उसमें अशुभ भी किसी न किसी रुप में अवश्य विद्यमान रहेगा। मनुष्य प्राकृतिक अशुभ के लिए न तो प्रत्यक्षतः उत्तरदायी है और न ही उस परनियंत्रण ही रख सकताहै; किन्तु इन प्राकृतिक आपदाओं के प्रति सचेत होकर इसके दुष्परिणामों को कम कर सकता है।

इसी प्रकार मनुष्य अपने आचरण और सामाजिक व्यवस्था में सुधार ला कर नैतिक अशुभ का भी निराकरण कर सकता है और संकल्प की स्वतंत्रता के दुरुपयोग को भी नियंत्रित कर सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दुःख के कारणों को जानकर उसका निराकरण करके दुःख से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है और ईश्वर से स्वतंत्र विश्व की कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार की धारणा का विकास करके ही अशुभ की समस्या से बचा जा सकता है।

15.14 सारांश

विश्वमें 'अशुभ' सभी के द्वारा अनुभूत किया जाने वाला तथ्य है। ईश्वरवादियों के अनुसार ईश्वर ही सृष्टि का स्रष्टा है। ईश्वरवाद यह भी मानता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, पूर्ण

एवं शुभहै। यदि विश्व में उपस्थित अशुभ और ईश्वरवादी संकल्पना पर एक साथ विचार किया जाए तो इन दोनों के बीच परस्पर संगति एवं सामज्जस्य में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। इसी कठिनाई को अनेक दार्शनिकों ने अपने विभिन्न तर्कों के द्वारा निराकृत करने का प्रयास करते हैं। अशुभ की समस्या के समाधान के लिए अब तक निम्नलिखित तर्क दिए गये हैं–

1. अशुभ मानव के संकल्प स्वातंत्र्य के दुरुपयोग का परिणाम है।
2. प्राकृतिक अशुभ नैतिक अशुभ के लिए दण्ड मात्र है।
3. प्राकृतिक अशुभ सफलता में सहायकहै।
4. अशुभ शुभ का मूल्य बढ़ाने के लिए अवश्य है।
5. अशुभ अपूर्ण शुभहै।
6. अशुभ अदृश्य अज्ञात जीवों के लिए आवश्यक है
7. अशुभ असत् या मिथ्या है।
8. अशुभ अनेक प्रत्ययों को सार्थक बनाता है।

उपर्युक्त तर्क के द्वारा विश्व में अशुभ की विद्यमानता और ईश्वरवाद की संकल्पना के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

15.15 प्रश्नबोध

1. अशुभ की समस्या पर विभिन्नदार्शनिकों के समाधान का एक संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. अशुभमानव के संकल्प स्वातंत्र्य के दुरुपयोग का परिणामहै।
3. प्राकृतिक अशुभ नैतिक अशुभ के लिए दण्ड मात्र है।
4. अशुभअपूर्ण शुभहै'– इस कथन से आपकहाँ तकसहमतहैं?

15.16 उपयोगीपुस्तकें

1. समकालीन धर्मदर्शन– डॉ0 याकुबमसीह
2. धर्मदर्शन की मूलसमस्याएं– डॉ0 वेदप्रकाशवर्मा
3. धर्मदर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन– डॉ0 शिवभानु सिंह

इकाई–16 आत्मा की अमरता

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 आत्मा की अमरता से संबंधित प्रमुख तर्क

16.3 आलोचना

16.4 निष्कर्ष

16.5 अमरता के विरुद्ध तर्क

16.6 सारांश

16.7 बोध- प्रश्न

16.8 उपयोगी पुस्तकें

-------------------0000----------------

16.0 उद्देश्य

प्रस्तुति इकाई में हम यह जानने का प्रयास करेंगे की आत्मा का अस्तित्व किस प्रकार का होता है ? हम अमृता को समझने का प्रयास करेंगे। क्या आत्मा शाश्वत होती है? क्या आत्मा अमर होती है ? आत्मा की अमरता से संबंधित विभिन्न तर्कों का परीक्षण करेंगे एवं यह देखने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार से यह तर्क आत्मा की अमरता को सिद्ध करने में सफल अथवा निष्फल हैं । साथ ही हम यह भी देखने का प्रयास करेंगे कि क्या आत्मा की अमरता के विरुद्ध भी तर्क हो सकते हैं और उनकी कितनी तार्किकता है।

16.1 प्रस्तावना

प्रायः आमतौर पर यह देखा गया है कि लोग आत्मा को अमर ही मानते हैं। उसका आधार क्या है यह ज्ञात हो या ना हो लेकिन सामान्य जनमानस खासकर भारतीय समाज में इस प्रकार की धारणा आमतौर पर स्वीकार की जाती है । यद्यपि कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जैसे चार्वाक इत्यादि जो इसमें विश्वास नहीं करते परंतु अधिकांश धर्म दार्शनिक आत्मा की अमरता को स्वीकार करते हैं । ईश्वर में विश्वास के अपेक्षा आत्मा की अमरता में विश्वास अधिक देखा जाता है ।

चाहे और पौर्वात्य और भारतीय दर्शन हो अथवा पाश्चात्य दर्शन सभी कहीं ना कहीं कुछ मात्रा मंश इस संप्रत्यय में विश्वास करते हैं । हिंदू, इस्लाम, ईसाई ,जैन, यहूदी आदि शरीर और मन से पृथक रूप में आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं और आत्मा को अविनाशी और अनश्वर माना जाता है ।कई पाश्चात्य एवं

भारतीय दर्शन शरीर से पृथक रूप में चेतन आत्मा को एक द्रव्य के रूप में स्वीकार करते हैं इसे सरल, निरवयव, माना जाता है जो की अविभाज्य, अपरिवर्तनशील , अविनाशी, अमर, अजार अपरिनामी होता है।

16.2 आत्मा की अमरता से संबंधित प्रमुख तर्क

दार्शनिकों द्वारा आत्मा की अमरता से संबंधित दिए गए तर्को से मुख्यत: चार प्रमुख आधारों का निर्माण होता है, जिससे अमरता को सिद्ध किया जाता है-

1. पश्चात दर्शन में तत्वमीमांसीय तर्क के आधार पर अमरता का समर्थन मिलता है, जिसे सर्वप्रथम प्लेटो ने प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार,आत्मा एक अव्यवहीन तत्व है और अवयव से युक्त पदार्थ को ही विनाश युक्त माना जाता है। विनाश का अर्थ है की वस्तु का अपने अवयव में विघटित हो जाना। चूंकि आत्मा एक सरल और अव्यवहीन तत्व है ,इसलिए इसका विभाजन संभव नहीं है। मृत्यु के बाद भौतिक तत्वों से युक्त शरीर विघटित हो जाता है, किंतु आत्मा नष्ट नहीं होती।

मध्ययुगीन दार्शनिक ' एक्विनास ' ने भी इस तर्क के द्वारा आत्मा की अमरता को सिद्ध किया है और कालांतर में यह रोमन कैथोलिक धर्म शास्त्रों में मानक बन गया। कैथोलिक दार्शनिक ' मैरी हांन ' के अनुसार, एक आध्यात्मिक सत्ता को इंगित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह किसी भौतिक या जड़ वस्तु से युक्त नहीं है।आधुनिक पश्चात दार्शनिक डेकार्ट के अनुसार ,दो प्रकार के द्रव्य निरपेक्ष एवं सापेक्ष होते हैं और सापेक्ष द्रव्य चित् अथवा आत्मा , निरपेक्ष द्रव्य ईश्वर के समान शाश्वत है । अर्थात उत्पति विनाश से मुक्त है।

2. कुछ दार्शनिक ईश्वर में निहित नैतिक गुणों के आधार पर आत्मा की अमरता को सिद्ध करते हैं। ईश्वर में न्याय , दया , प्रेम आदि नैतिक गुण पाए जाते हैं और ईश्वर ने ही हम सब की रचना की है ,उसी ने ही हमारे मन में अमरता की इच्छा भी उत्पन्न की है। न्यायाधीश होने के कारण वह हमारी अमरता की इच्छा अपूर्ण रहने नहीं दे सकता । जिस प्रकार संतान से प्रेम करने वाले माता-पिता स्वयं उसकी हत्या नहीं कर सकते । उसी प्रकार अपने द्वारा रचित आत्माओं का विनाश ईश्वर नहीं कर सकता।

उपर्युक्त धार्मिक तर्क को ' टेलर ' अपनी पुस्तक ' फिलासफी ऑफ़ रिलिजन ' में अत्यंत उपयोगी मानते हैं। उनके अनुसार कालिक एवं तार्किक दृष्टि से ईश्वर विषयक विश्वास की अपेक्षा अमरता संबंधी विश्वास गौण है अर्थात पहले ईश्वर है, उसके बाद अमरता का विश्वास है। इसी क्रम में ' टेलर ' कहते हैं कि ईश्वर विषयक सिद्धांत के अभाव में मानवीय अमरता संबंधी विश्वास के लिए कोई आधार प्राप्त करना असंभव है ; अतः न्याय ,प्रेम ,दया आदि नैतिक गुणों के आधार पर ही आत्मा की अमरता प्रभावित होती है।

3- पाश्चात्य दार्शनिक ' कांट' ने नैतिकता की अनिवार्य मांग के रूप में आत्मा की अमरता के रूप में स्वीकार किया है, जिसमें व्यावहारिक तर्क बुद्धि के मांग के अनुरूप अमरता को मान्यता दी जाती है। उनके अनुसार ' कर्तव्य ' के लिए कर्तव्य का पालन करना ही वास्तविक रूप से नैतिक आचरण है। इस आचरण के फलस्वरुप मनुष्य को समुचित आनंद और परमशुभ प्राप्त होना चाहिए। इस परमशुभ या

उच्चतर मूल्य के लिए मृत्यु के पश्चात् जीवन के अंत को स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस चरम लक्ष्य की प्राप्ति करना इस सीमित जीवन में संभव नहीं है।

इसलिए इस संसार में बार-बार जीवन प्राप्त करना होगा अर्थात आत्मा को अमर मानना ही पड़ेगा। ' कांट' के शब्दों में अमरता से संबंधित मान्यता के आधार पर ही व्यावहारिक दृष्टि से परमशुभ संभव है; परिणामत: नैतिक नियम के साथ अभिन्न रूप से संबंध अमरता विशुद्ध व्यावहारिक तर्क बुद्धि की पूर्व मान्यता है। उल्लेखनीय है कि ' कांट' नैतिकता की तीन पूर्व मान्यताओं - ईश्वर का अस्तित्व - संकल्प की स्वतंत्रता और आत्मा की अमरता को स्वीकार करते हैं।

4- वर्तमान वैज्ञानिक युग में मनोविज्ञान की नई शाखा परामनोविज्ञान के अंतर्गत विभिन्न विधियो से आत्मा की अमरता का समर्थन किया गया है। परमनोवैज्ञानिकों के अनुसार मृत व्यक्ति की आत्माओं के साथ संपर्क किया जा सकता है ,ऐसे संपर्क से यही सिद्ध होता है की मृत्यु के पश्चात शरीर का नाश होता है, आत्मा का नहीं। मृत व्यक्तियों की आत्मा के साथ संपर्क स्थापित करने वाले व्यक्तियों ने इन आत्माओं से ऐसी गोपनीय समस्याएं प्राप्त की है जिसका ज्ञान किसी जीवित व्यक्ति को नहीं था। बाद में यह सूचनाये अन्य उपायों से प्रमाणित हुई।

इसके अतरिक्त ' टेलीपैथी' के आधार पर ही आत्मा के संपर्क का दावा किया जाता है। छोटे-छोटे बालकों द्वारा पूर्वजन्म की घटनाओं का वर्णन करना आत्मा की अमरता का समर्थन करता है। इसी क्रम में 'डॉ० सिटीवेंशन' ने अपने तर्क द्वारा पुनर्जन्म सिद्धांत को प्रमाणित करने का प्रयास किया है, साथ ही विज्ञान के शक्तिसंरक्षण नियम के अनुसार ही आत्मा की अमरता के सिद्धांत को बल मिलता है।

5. उपयुक्त तर्कों के अतिरिक्त आत्मा की अमरता को सिद्ध करने में (प्लेटो का सिद्धांत महत्वपूर्ण है,जिसके अनुसार समस्त भौतिक वस्तुएं परिवर्तनशील एवं नश्वर हैं, किंतु दिव्य जगत में विद्यमान उनके भौतिक आकर या द्रव्य कभी भी परिवर्तित या नष्ट नहीं होते। आत्मा का संबंध किसी अभौतिक अपरिवर्तित तथा अनस्वर दिव्य जगत से है ।भौतिक जगत में शरीर के नष्ट होने के पश्चात आत्मा पुन: अपने मूल स्रोत अर्थात दिव्य जगत में प्रवेश कर जाती है। इसलिए आत्मा कभी भी नष्ट नहीं होती। अतः आत्मा अमर है।

16.3 आलोचना

1. आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के प्रयास का विरोध व्यापक स्तर पर मिलता है। प्लेटो ने तत्वमीमांसीय चिंतन के अंतर्गत आत्मा को अवयव रहित सरल द्रव्य बताया है,किंतु उनका सरल द्रव्य अतार्किक एवं अविश्वसनीय है। आधुनिक मनोविज्ञान यहां तक कहता है कि आत्मा एक अवयवयुक्त संरचना वाली इकाई है, जिसका विघटन हो सकता है।

आत्मा की अमरता हेतु ईश्वरवारी तर्क अत्यंत सीमित है। यह केवल उन्हीं विचारको को को मान्य हो सकता है ,जो की नैतिक गुणों से युक्त ईश्वर में विश्वास करते हैं। पुन: ईश्वर का अस्तित्व एक विवादासपक विषय है, जो तार्किक दृष्टि से प्रामाणिक नहीं हो पाया।

2. उल्लेखनीय है कि जेम्स, ' फ्लू ' जैसे दार्शनिकों ने या सिद्ध किया है कि ईश्वर में विश्वास करने की अपेक्षा,अमरता में विश्वास करने वालों की संख्या अधिक है। भारतीय दर्शन में जैन, सांख्य, मीमांसा आत्मा पर विश्वास करते हैं, किंतु ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते।

3. ' कांट' के अनुसार, परमशुभ की प्राप्ति हेतु नैतिकता की पूर्व मान्यता के रूप में आत्मा की अमरता को स्वीकार करना आवश्यक है, किंतु कांट ने स्वयं माना है कि विशुद्ध तार्किक दृष्टि से इस तर्क को आत्मा की अमरता के लिए प्रमाणित नहीं माना जा सकता। वस्तुत: इस तर्क में नैतिकता की स्थापना एवं संभावना हेतु अमरता को स्वीकार किया गया है, किंतु इस विश्वास की सत्यता तर्कों द्वारा प्रमाणित नहीं की जा सकती। पुन: इस तर्क के विरोध में कहा जा सकता है कि हमारे मध्य ऐसे मनुष्य हैं कि जो आत्मा को अमर ना मानने के बावजूद भी नैतिक है।

4. परमनोवैज्ञानिक तर्कों के आधार पर अमरता को सिद्ध करने के प्रयास में सर्वाधिक कमी यह है कि परमनोवैज्ञानिक कथनों को सत्यापित या प्रमाणित नहीं किया जा सकता।मृत आत्माओं से संवाद स्थापित करने को वैज्ञानिक समर्थन प्राप्त नहीं है।आज तक ऐसी वैज्ञानिक विधियां या यंत्रों का अन्वेषण नहीं किया जा सका है, जिसके द्वारा मृत व्यक्ति की आत्मा के साथ संपर्क स्थापित किया जा सके। पुन: पुनर्जन्म के विभिन्न उदाहरणों की भी प्रमाणिकता संदिग्ध है।

5. ' प्लेटो ' द्वारा प्रस्तुत ज्ञान मीमांसीय युक्ति में पहले से मान लेते हैं की आत्मा अमर है, फिर उसे सिद्ध करते हैं। यह पूर्वाग्रह मात्र है कि आत्मा पूर्वजन्म से प्राप्त ज्ञान को स्मृति के रूप में संचित रखती है।वस्तुतः प्लेटो का प्रत्यय जगत या दिव्य लोक विवाद का विषय रहा है ,जिसका खंडन उनके शिष्य अरस्तू ने ही कर दिया था। अरस्तु के अनुसार दृश्यमान जगत से परे दिव्य लोक की अवधारणा अतार्किक है। प्रत्यय किसी दिव्य लोक में होने के बजाय इसी लोक की वस्तुओं में निहित है।

6. भारतीय चिंतन में कर्म सिद्धांत के आधार पर अमरता को सिद्ध करना अपने तार्किक निष्कर्ष तक नहीं पहुंच पाता।इस तथ्य का कोई प्रभाव नहीं है कि व्यक्ति को अपने पूर्व जन्म का फल उस जन्म में मिलता है। बौद्ध दर्शन में कर्म सिद्धांत एवं पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है, किंतु आत्मा की अमरता को मानता नहीं दी गई हैं।

16.4 निष्कर्ष

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है की अमरता के संदर्भ में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं दिया जा सकता,क्योंकि धर्म दार्शनिक केवल उसी विचार या सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, जिसके समर्थन में पर्याप्त विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध हो। इसलिए अमरता का विचार तार्किक रूप से अस्वीकार है ; तथापि अमरता की प्रासंगिकता इसलिए है कि यह धर्म परायण व्यक्ति के जीवन का मार्गदर्शन एवं नियमन करता है। संसार की कोई भी सभ्यता या संस्कृति नहीं है, जहां यह अवधारणा किसी न किसी रूप में विद्यमान ना हो। अतः अमरता को सार्वभौम ज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है।

16.5 अमरता के विरुद्ध तर्क

आत्मा की अमरता को सिद्ध करने के प्रयासों के साथ-साथ पश्चात दर्शन में आत्मा की अमरता और अस्तित्व के विरुद्ध दार्शनिक अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करते रहे हैं। प्राचीन ग्रीक दार्शनिक डेमोक्रोटस, एपीक्यूरस जैसे दार्शनिकों ने शरीर तथा मन को शाश्वत और अभौतिक द्रव्य के रूप में आत्मा की सत्ता को अस्वीकार किया है। अनुभववादी ह्यूम ने आत्मा को इंद्रिय संवेदनाओं, संवेगों और मानसिक अनुभूतियों के समुच्य के अतिरिक्त कुछ नहीं माना है।समकालीन पश्चात दर्शन में, एअर आदि तार्किक भाववादियों ने अमरता को निरर्थक एवं आत्मव्याघाती धारण के रूप में व्याख्यायित किया है।

प्रमुख भाषा विश्लेषणवादी पी०टी ० गीच, एंटोनी फ्लयू ने शाब्दिक विश्लेषण के आधार पर आत्मा की अमरता के विचार को निरर्थक सिद्ध किया है कि जिस प्रकार "मर जाना" एवं बच जाना दोनों परस्पर विरोधी शब्द है उसी प्रकार किसी व्यक्ति के संबंध में हम सार्थक रूप से नहीं कह सकते हैं कि वह मर गया है या बच गया। एंटोनी फ्लयू के अनुसार आत्मा की अमरता वाक्य उतना ही निरर्थक है जितना कि यह कहना है कि वह कुंआरा पति है या त्रिभुज के चार कोण होते हैं।समकालीन दार्शनिक फिलिपींस अपनी पुस्तक ' मृत्यु एवं अमरता' में कहते हैं कि आत्मा कोई भौतिक या अभौतिक द्रव्य नहीं है अपितु यह मनुष्य की धार्मिक चेतना है। भारतीय दर्शन में कुछ दार्शनिक शरीर से स्वतंत्र चेतन रूप में आत्मा की अमरता को स्वीकार नहीं करते जो कि शरीर के मरणोपरांत जीवित है।

चावर्क के अनुसार शरीर से पृथक आत्मतत्व की सत्ता नहीं है और शरीर के नष्ट होने के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार आत्मा शाश्वत ना होकर रूप, वेदना,संस्कार,विज्ञान एवं संज्ञा नामक पंच स्कंधों का संघात है। गौतम बुद्ध शाश्वत आत्मा का खंडन करने के साथ ही पुनर्जन्म को स्वीकार करते हैं, किंतु पुनर्जन्म आत्मा का न होकर संस्कारों का होता है। इसलिए आत्मा की अमरता को बौद्ध दर्शन में अस्वीकार किया गया है।

16.6 सारांश

तर्कों के द्वारा आत्मा को असिद्ध करने का प्रयास उसी प्रकार निष्फल है जिस प्रकार तर्कों के द्वारा आत्मा की अमरता को सिद्ध किया जाता है। आत्मा की अमरता तर्कों द्वारा ना तो सिद्ध हो सकती है और ना ही असिद्ध।

16.7 बोध- प्रश्न

1. आत्म तत्व से आप क्या समझते हैं? आत्म तत्व क्षणिक है अथवा शाश्वत विवेचना कीजिए।
2. आत्मा की अमरता से संबंधित विभिन्न मतों की समीक्षा कीजिए।

16.8 उपयोगी पुस्तकें

1 समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।
2 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।
3 धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

--------00-------

खण्ड–6 नये आयाम

इकाई–17 धार्मिक भाषा

धार्मिक ज्ञान (भाषा)–संज्ञानात्मक असंज्ञानात्मक

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 संज्ञानात्मक

17.3 असंज्ञानात्मक

17.4 सादृश्यतावाद

17.5 प्रतीकवाद

17.6 निष्कर्ष

................0000..............

17.0 उद्देश्य

धर्म दर्शन के अन्तर्गत विचार की जाने वाली महत्वपूर्ण समस्याओं में धार्मिक ज्ञान का स्वरूप प्रमुख है। सामान्य रूप से ज्ञान का अर्थ है कि मनुष्य अपने अनुभव निरीक्षण और तर्क बुद्धि आदि के द्वारा जो कुछ जानता है या जान सकता है वह ज्ञान है। इस ज्ञान को जब हम धार्मिक विषयों के सन्दर्भ में जैसे ईश्वर का अस्तित्व, आत्मा की अमरता, भक्ति आदि में प्रयुक्त करते हैं तो यह धार्मिक ज्ञान कहलाता है। विश्व के प्रमुख धर्मों अथवा धर्म ग्रन्थों में भी प्रायः इन्ही विषयों से संबंधित कथनों या सिद्धांतों को धार्मिक ज्ञान के अन्तर्गत माना गया है। इस ज्ञान को जिस भाषा में व्यक्त किया जाता है वह धार्मिक भाषा है।

17.1 प्रस्तावना

प्रथम स्वरूप संज्ञानात्मक सिद्धांत का है। संज्ञानात्मक ज्ञान के दो प्रकार सश्लेषणात्मक या तथ्यात्मक एवं द्वितीय विश्लेषणात्मक या आकारिक होते हैं। आनुभविक या तथ्यात्मक ज्ञान, हमें जगत के संबंध में नवीन तथा तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करते हैं। हमारी सामान्य भाषा एवं प्राकृतिक सामाजिक विज्ञानों के सभी तथ्यपरक कथन तथ्यात्मक ज्ञान के अन्तर्गत आते हैं जैसे कलम मेज पर है, गुलाब लाल है या सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार के कथनों को संज्ञानात्मक कथन भी कहा जाता है।

ज्ञान के द्वितीय प्रकार आकारिक की विशेषता है कि इससे संबंधित कथन अनिवार्यतः विश्लेषणात्मक होते हैं, अर्थात् कुछ शब्दों के विश्लेषण पर ही यह ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे त्रिभुज की तीन भुजाएं होती हैं या सभी कुंवारे अविवाहित होते हैं। इस ज्ञान के द्वारा जगत अथवा इससे संबंधित किसी वस्तु विशेष का तथ्यात्मक ज्ञान अथवा नवीन ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। एक अन्य अर्थ में इस प्रकार के कथनों में विधेय, उद्देश्य पद की पुनरावृत्ति मात्र होते हैं।

स्पष्टतः धार्मिक कथन हमें ईश्वर या किसी अन्य पारलौकिक सत्ता से संबंधित कुछ विशेष प्रकार के अलौकिक (धार्मिक तथ्य) का ज्ञान प्रदान करते हैं। इसी व्याख्या के आधार पर वे धार्मिक कथनों को संज्ञानात्मक कथन मानते हैं। बेसिल मिचल एवं जान हिक धार्मिक ज्ञान की संज्ञानात्मकता को वैज्ञानिक एवं लौकिक ज्ञान की मिथ्यापनीयता एवं सत्यापनीयता की कसौटी पर कस कर सिद्ध करना चाहते हैं।

मिथ्यापनीयता के सिद्धांत के अनुसार वही ज्ञान सार्थक है जिसके मिथ्यापित होने की संभावना है। इस सिद्धांत को कार्ल पापर ने दिया था। इस आधार पर मिचल का यह मानना है कि धार्मिक कथनों की मिथ्यापनीयता संभव है, अतः ये कथन तथ्यपरक कथन है। दूसरी तरफ हिक, मरणोत्तर सत्यापन सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार मरने के बाद की स्थिति में व्यक्ति धार्मिक कथनों का विशेष प्रकार के अनुभव द्वारा सत्यापन करता है। क्रौम्बी ने धार्मिक ज्ञान को तथ्यपरक ज्ञान सिद्ध करने के लिए सादृश्य सिद्धांत का प्रयोग किया है। उनका आधारभूत तर्क है कि मानवीय गुणों के सादृश्य के आधार पर ईश्वरीय गुणों का ज्ञान संभव है। एक अन्य समकालीन दार्शनिक एल0मैस्कल ने भी धार्मिक ज्ञान के लिए इस सिद्धांत को बहुत महत्वपूर्ण माना था।

इस मत के समर्थक मानते हैं कि धार्मिक ज्ञान से हमें जीवन, जगत, ईश्वर आदि के बारे में तथ्यात्मक ज्ञान प्राप्त होता है साथ ही, धर्म परायण व्यक्ति धार्मिक ज्ञान को असंदिग्ध रूप से सत्य मानते हैं। इस तरह धर्म परायण व्यक्ति धार्मिक ज्ञान को एक ऐसा संश्लेषणात्मक ज्ञान मानते हैं। जो सदैव सत्य होता है। संज्ञानात्मक सिद्धांत में भी धार्मिक ज्ञान को तथ्यात्मक, असंदिग्ध रूप में सत्य एवं सष्लेषणात्मक ज्ञान माना जाता है।

17.2 संज्ञानात्मक

उपर्यूक्त मत से असंज्ञानवादी सहमत नहीं हैं। वस्तुतः धार्मिक ज्ञान को हम संज्ञानात्मक कथन के अन्तर्गत नहीं रख सकते, अर्थात् धार्मिक ज्ञान अनुभव के द्वारा सत्यापित नहीं हो सकते। संज्ञानात्मक कथन का अर्थ है जो तथ्यात्मक होने के साथ–साथ आनुभवित स्तर पर सत्य या मिथ्या प्रमाणित किये जा सकें इस दृष्टि से विचार करने पर धार्मिक ज्ञान या इससे संबंधित धार्मिक कथन वास्तविक रूप में संज्ञानात्मक सिद्ध नहीं होते। जैसे–आत्मा अमर है या ईश्वर शक्तिशाली है जैसे कथनों की आनुभविक स्तर पर सत्य अथवा मिथ्या प्रमाणित नहीं किया जा सकता। आकारिक ज्ञान के द्वारा यदि हम धार्मिक ज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करें तो धार्मिक ज्ञान इस कसौटी के अनुरूप नहीं है। जैसे धर्म परायण व्यक्ति जब यह कहता है कि ईश्वर या किसी अप्राकृतिक सत्ता का अस्तित्व है तो वह व्यक्ति उस कथन को मात्र आकारिक नहीं मानता बल्कि इसमें तथ्यात्मक एवं नवीनता का दावा वस्तुगत एवं स्वतंत्र अतीन्द्रिय ईश्वर के अस्तित्व, गुणों एवं कारणों आदि का बोध कराते हैं। उपर्युक्त आधार पर ब्रथवेट महोदय धार्मिक ज्ञान से संबंधित कथनों को विश्लेषणात्मक कथन नहीं मानते। तार्किक भाववादी एअर भी विश्लेषणात्मक श्रेणी से अलग धार्मिक कथनों को निरर्थक कहते हैं।

17.3 असंज्ञानात्मक

इस क्रम में महत्वपूर्ण मत असंज्ञानात्मक सिद्धांत है। इसके समर्थक दार्शनिक एयर, फ्ल्यू, ब्रेथवेट का मत है कि ईश्वर या अनय अति प्राकृतिक सत्ता से सम्बन्धित धार्मिक कथन हमें किसी प्रकार का तथ्यात्मक ज्ञान प्रदान न करके वस्तुतः वस्तुतः हमारी विशेष अभिवृत्तियों अथवा भावनाओं को अभिव्यक्त और जागृत करते हैं। अतः इन्हें तथ्यात्मक अथवा संज्ञानात्मक कथन न मानकर भावनात्मक या संवगात्मक कथन माना जा सकता है। जब धर्म परायण व्यक्ति इन धार्मिक कथनों का प्रयोग करते हैं तो हमें किसी वस्तु अथवा अलौकिक सत्ता के विषय में कोई तथ्यात्मक जानकारी नहीं मिलती है। अतः इसका अर्थ कि धार्मिक कथनों को सत्य अथवा मिथ्या प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। अतः इनकी सत्यता के विषय में सार्थक वाद विवाद भी सम्भव नहीं है। अतः धार्मिक कथन संवेगात्मक वाक्यों की भांति न सत्य होते हैं और न ही मिथ्या। हमारे जीवन में इन कथनों का वही महत्व है जो संवेगात्मक वाक्यों, आदेशों प्रचारात्मक वाक्यों अथवा उपदेशों का होता है। इसका अभिप्राय है कि धार्मिक कथन तथ्यात्मक दूष्टि से सार्थक न होते हुए भी हमारे लिए निरर्थक तथा महत्वहीन नहीं है। इस प्रकार असंज्ञानवादी दार्शनिक मानव जीवन के लिए धार्मिक कथनों की प्रभावशीलता और महत्ता को स्वीकार करते हैं।

यहां एयर का मत है कि धार्मिक कथन मानवीय अनुभव द्वारा सत्यपनीय है अतः ये तथ्यात्मक दृष्टि से निरर्थक हैं। हां ये संवेगाात्मक दृष्टि से कथन है। हेयर का मानना है कि धार्मिक ज्ञान तथ्यात्मक ज्ञान नहीं है। यह वास्तव में मनुष्य के ब्लिक की अभिव्यक्ति है। ब्लिक मनुष्य की एक निबौद्धिक मनोवृत्ति है। यह तथ्यो और तर्कों पर आधारित नहीं है किंतु इसका मनुष्य के विचारों एवं आचरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन्हें सत्य अथवा मिथ्या सिद्ध करने के लिए बौद्धिक तर्क नहीं दिये जा सकते। मैकफर्सन धार्मिक विषय को अवर्णनीय कहते हैं। एण्टोनी फ्ल्यू मानते हैं कि मिथ्यापनीयता न होने के कारण ये कथन निरर्थक है। उनके अनुसार – 'ऐसा क्या हो सकता है जिसे आप ईश्वर के अस्तित्व तथा प्रेम के विरुद्ध प्रमाण के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार होंगे। ब्रेथवेट के अनुसार नैतिक कथनों के समान ही धार्मिक कथन भी अच्छे जीवन के प्रति हमारी प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हैं। जैसे जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि ईश्वर सबसे प्रेम करता है तो उसका यह कथन या ज्ञान किसी तथ्य को वर्णन न करके इसके इस आचरण को नीति के रूप में घोषित कर कहता है मनुष्यों को सभी–व्यक्तियों से प्रेम करना चाहिए। स्पष्ट है कि यह सिद्धांत एक तरह से धार्मिक ज्ञान की तथ्यात्मक संभावना का निषेध करता है, इस सिद्धांत के प्रस्थापकों एवं समर्थकों का मत है कि धार्मिक ज्ञान हमें किसी प्रकार का तथ्यात्मक ज्ञान प्रदान नहीं करता है। यह वस्तुतः हमारी कुछ अभिवृत्तियों अथवा भावनाओं को अभिव्यक्त एवं जागृत करते हैं।

17.4 सादृश्यतावाद

एक्विनास के अनुसार ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वरूप से संबंधित ज्ञान आस्था पर केन्द्रित हैं। चूंकि यह अनिश्चित एवं अस्पष्ट है। धार्मिक शक्तियों का प्रयोग जब कोई व्यक्ति करता है तो यह एकार्थक ढंग से होता है। इसका प्रयोग साम्यानुमान द्वारा सम्भव है।

व्यावहारिक जीवन में सामान्य भाषिक प्रयोग के अन्तर्गत शब्दों को मूलतः दो तरीकों से प्रयोग किया जाता है प्रथम एकार्थक एवं द्वितीय अनेकार्थक जब किसी शब्द का एक ही अर्थ में प्रयोग होता है तब उसे एकार्थक कहते हैं। जैसे CAT का अर्थ बिल्ली होता है। पुनः इसी शब्द का अर्थ दो अलग एवं पूर्णतः

असम्बद्ध अर्थ में प्रयुक्त होता है तो उसे अनेकार्थक कहते हैं। जैसे BAT के दो अर्थ बल्ला एवं चमगादड़ होते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रयोगों से धार्मिक शब्द भिन्न होता है तथापि उनका प्रयोग साम्यानुमान द्वारा होता है। जैसे ईश्वर को करुणामय कहा जाता है तथा व्यवहार में मानव को भी करुणामय कहते हैं। किन्तु यह शब्द जिन स्थितियों के लिए अर्थात ईश्वर एवं मनुष्य के लिए प्रयुक्त हो रहा है उसमें कुछ भिन्नताएं भी हैं। जिस तरह मनुष्य करुणामय है। ठीक उसी तरह ईश्वर नहीं है। यह प्रयोग एकार्थक ढंग से नहीं किया जा सकता। पुनः ऐसा भी नहीं है कि दोनो स्थितियां पूर्णतः भिन्न है। इसमें साम्यता भी होती है। जैसे करुणामय का प्रयोग जब ईश्वर के लिए किया जाता है तब यह मनुष्य के करुणा से पूर्णतः भिन्न नहीं है। ईश्वर को करुणामय माना जाता है। साथ ही मनुष्य में भी करुणा का स्वरूप मिलता है। अतः करुणामय गुण के सन्दर्भ में दोनों में समानता है। जिससे इसका प्रयोग अनेकार्थक ढंग से नहीं किया जा सकता।

इस चिन्तन को एक अन्य उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे वफादार शब्द का प्रयोग मनुष्य एवं कुत्ते दोनों के सन्दर्भ में होता है किन्तु इसका प्रयोग एकार्थक तथा अनेकार्थक दोनो तरीके से सम्भव नहीं है। आदमी तथा कुत्ते में अंतर है। अतः एकार्थक ढंग से वफादार शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। कुत्ते की अपेक्षा मनुष्य अधिक उत्तरदायी तथा श्रेष्ठ है।

पुनः वफादार शब्द का प्रयोग अनेकार्थक ढंग से भी नहीं हो सकता है क्योंकि इस गुण के सन्दर्भ में मनुष्य एवं कुत्ते में समानता भी विद्यमान है। अन्य जानवरों की अपेक्षा कुत्ते के व्यवहार में एक निष्ठा होती है जो कि वफादार मनुष्य में भी पायी जाती है। अतः वफादार शब्द का प्रयोग एक सादृश्य पर आधारित अनुमान या साम्यानुमान द्वारा किया जाता है।

उल्लेखनीय है कि मनुष्य व ईश्वर तथा मनुष्य व जानवर में साम्यानुमान में प्रयोग स्तर भिन्न–भिन्न होता है। प्रथम में साम्यानुमान ऊर्ध्वमुखी है जिससे मनुष्य अपनी अपूर्णताओं को ईश्वर के पूर्णता से व्याख्यायित करता है। द्वितीय में साम्यानुमान अधोमुखी है। जिसमें मनुष्य की अपेक्षा कुत्ते के गुणों को कमतर रूप में सादृश्य से जानते है। ईश्वर संबंधी प्रमाण में एक्विनास कहते हैं कि विश्व की सभी आकस्मिक या नश्वर वस्तुओं की व्याख्या अनिवार्य सत्ता ईश्वर द्वारा की जा सकती है। स्पष्टतः धार्मिक भाषा में ईश्वर के गुणों का वर्णन जिस साम्यानुमान द्वारा होता है, उसमें समानता के भीतर असमानता तथा असमानता के भीतर समानता है।

17.5 प्रतीकवाद

पाल तिलिक के अनुसार परमसत्ता अनुभवातीत एवं अज्ञेय है। अतः उसके सन्दर्भ में कुछ भी कहने के एिल उसे विभिन्न प्रतीकों की अनिवार्य सहायता लेनी होती है। जिसके माध्यम से मनुष्य से अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकता है। यह प्रतीक उस परमसत्ता का ज्ञान नहीं करा सकते किन्तु परम सत्ता की ओर संकेत करके अप्रत्यक्ष रूप से आभास अवश्य करा देते हैं।

पाल तिलिक के अनुसार धार्मिक भाषा प्रतीकात्मक भाषा है तो तथ्यात्मक भाषा से भिन्न होती है। प्रतीक ही सशीम और असीम में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। तिलिक के शब्दों में वह जो आदर्श है वह अदृश्य है। जो कि प्रतीकों में झलक जाता है। इस रूप में उसकी वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति हो जाती है।

धार्मिक भाषा में प्रयुक्त प्रतीकों के स्वरूप की व्याख्या के लिए तिलिक ने प्रतीकों के सामान्य लक्षणों का विवेचन किया है।

प्रतीक अपने से पृथक किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करते हैं। अथवा उसका प्रतिनिधित्व करते हैं ये जिन वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं उनमें सहभागी भी होते हैं। वह स्वयं को इंगित नहीं करते बल्कि उसके सादृश्य से अन्य सत्ता की जानकारी मिलती है। प्रतीक वहीं आवश्यक माने जाते हैं जहां किसी ऐसी सत्ता की सूचना मिलती है जिसे शब्दों में पूरी तरह से संप्रेषित नहीं किया जा सकता।

सामान्य प्रतीकों से भिन्न धार्मिक प्रतीक होते हैं। तिलिक के अनुसार सामान्य प्रतीक जिस सत्ता की ओर संकेत करते हैं उन्हें प्रतीकों की सहायता के बिना भी जाना जा सकता है किन्तु धार्मिक प्रतीक जिस परमसत्ता की ओर संकेत करते हैं उन्हें प्रतीकों की सत्ता नहीं समझा जा सकता क्योंकि यह सत्ता अनुभवातीत है। धार्मिक प्रतीकों का स्वरूप व्यापक है जिसके अन्तर्गत ईश्वर, धर्मगुरू, धर्मग्रन्थ आदि सभी आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष कर्मकाण्डों तथा मृत वस्तुओं को भी धार्मिक प्रतीक माना जाता है। यहां तक कि धर्मपरायण व्यक्ति जिस ईश्वर की उपासना करते हैं उसे भी तिलिक प्रतीक मानते हैं। उनके अनुसार निर्गुण ब्रह्म तक पहुंचने के लिए सगुण ईश्वर की उपासना प्रतीकात्मक है। मोक्ष के क्रम में ईश्वरोपासना अनावश्यक हो जाती है।

तिलिक के अनुसार ईश्वर शब्द के दो अर्थ होते हैं। प्रथम निर्गुण निराकार सत्ता जो अज्ञेय है तथा द्वितीय सगुण एवं साकार ईश्वर जो भक्तों के उपासना का विषय है। प्रथम अर्थ में प्रतीक के रूप में न होकर ईश्वर परमसत्ता है। किन्तु दूसरे अर्थ में वह धार्मिक प्रतीक मात्र है। धर्मपरायण व्यक्ति प्रायः दूसरे अर्थ मे प्रायःदूसरे शब्द का प्रयोग करता है जो कि निर्गुण निराकार निरातीत सत्ता की ओर संकेत करता है।

स्पष्टतः ईश्वर के गुण सम्बन्धित सभी कथन प्रतीकात्मक है अर्थात अर्द्धसंज्ञानात्मक है। क्योंकि प्रतीक ईश्वर का अर्द्धज्ञान ही देते हैं। ईश्वर शुद्ध सत है कथन ही एकमात्र अप्रतीकात्मक है। तथा इसके अतिरिक्त धर्म विषयक सभी कथन अप्रतीकात्मक होते हैं।

17.6 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धार्मिक ज्ञान सामान्यतः ज्ञान के वास्तविक स्वरूप से भिन्न है, वस्तुतः यह ज्ञान अति प्राकृतिक एवं अतीन्द्रिय सत्ताओं से संबंधित होने के कारण हमारी तर्क बुद्धि अथवा इन्द्रियानुभव से परे है। मानवीय ज्ञान की यह सीमा है कि मनुष्य अपनी तर्क बुद्धि यहां तक कि व्यापक अर्थ में इन्द्रियानुभव के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से इस अलौकि सत्ता के प्रति अपने ज्ञान को स्वीकार करने के लिए बाध्य है कि धार्मिक ज्ञान हो स्मृति या रहस्य के आधार पर ही व्याख्यायित किया जा सकता है तथापि विटगेंस्टाइन का कथन महत्वपूर्ण है कि ''धार्मिक कथनों को तथ्यपरक कथन मानकर उसके स्वरूप की परीक्षा करना व्यर्थ है। धार्मिक कथनों की सार्थकता धार्मिक जीवन पद्धति के अन्तर्गत ही तय की जानी चाहिए।''

-------0000--------

इकाई–18 धर्म निरपेक्षता

18.0 उददेश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 अर्थ एवं परिभाषाएं

18.3 डा० राधाकृष्णन का दृष्टिकोण

18.4 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

18.5 धर्मनिरपेक्षतावाद या इहलौकिकता वाद

18.6 भारतीय धर्म निरपेक्षतावाद

18.7 भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्षता

18.8 सारांश

18.9 बोध - प्रश्न

18.10 उपयोगी पुस्तकें

-------------------00--------------

18.0 उददेश्य

प्रस्तुत ईकाई धर्म निरपेक्षतावाद' के बारे में विवेचन प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त यह ईकाई यही प्रयास रहा है कि कुछ तर्को अथवा तथ्यों के आधार पर धर्म- निरपेक्षतावाद से सम्बन्धित कुछ प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए इस सिद्धांत के वास्तविक अर्थ तथा स्वरूप को स्पष्ट करना तथा धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन करना है। धर्मनिरपेक्षता वाद के स्वरूप तथा इस सिद्धांत के उदय तथा विकास की ऐतिहासिक पृष्टभूमि का विवेचन करने के पश्चात परिशिष्ट के अन्त में इस प्रश्न पर भी विचार किया जायेगा कि भारत वास्तव में धर्मनिरपेक्ष है या नहीं।

18.1 प्रस्तावना

समकालीन धर्म राजनीति तथा समाज में धर्म निरपेक्ष शब्द बहुचर्चित एवं सर्वाधिक प्रचलित शब्द है। प्राय: लोग इस शब्द के वास्तविक अर्थ को बिना समझे ही इसका प्रयोग करते है। कभी- कभी धर्म निरपेक्षता का अर्थ – धर्म की उपेक्षा, धर्म का खण्डन, धर्म का उन्मूलन धर्म की अवहेलना आदि से किया जाता है। राजनीति में प्रायः

धर्मनिरपेक्ष शब्द सम्प्रदायवाद के विपरीत अर्थ में लिया जाता है। प्रायः राजनीतिज्ञ दो खेमें में घंट जाते है Secular and Communal - धर्म निरपेक्ष व साम्प्रदायिक। ये सभी अर्थ उचित नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि इस शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयास किया जाय।

18.2 अर्थ एवं परिभाषाएं

Encyclopaedia of Religion and Ethics से धर्मनिरपेक्षता को निम्न प्रकार पारिभाषित किया गया - धर्मनिरपेक्षता वाद राजनीतिक तथा दार्शनिक प्राथमिकता से युक्त ऐसी विचारधारा है, जो उद्देश्य पूर्ण रूप से नैतिक किन्तु धार्मिक रूप से निषेधात्मक है।" Encyclopaedia Britanica गैर आध्यात्मिक धर्म अथवा आध्यात्मिक विषयों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न होना, वह जो धर्म से भिन्न हो, उसके विरुद्ध अथवा उससे सम्बन्धित न हो तथा आध्यात्मिक तथा धार्मिक वस्तुओं के विपरीत सांसारिक हो"

18.3 डा० राधाकृष्णन का दृष्टिकोण

डा० एस राधा कृष्णन भारतीय धर्म निरपेक्षता के आधिकारिक प्रवक्ता माने जाते है। उनके अनुसार सभी धर्मों के प्रति समभाव रखना ही धर्म निरपेक्षता है। यही भारतीय धर्म निरपेक्षता की सही व्याख्या है। इससे न तो धर्म का विरोध होता है न ही उपेक्षा नही उसे अप्रासंगिक माना जाता है। उसमें राज्य का संचालन किसी धर्म के निर्देशानुसार नहीं होता। राज्य सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है। साम्प्रदायिक भेदभाव रहित तटस्थ एवं निष्पक्ष प्रशासनिक दृष्टिकोण भारतीय सन्दर्भ में धर्म निरपेक्षता कहा जा सकता है।

जब भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य कहा जाता है तब इसका यह अर्थ नहीं है कि यह धर्म की प्रासंगिकता को अस्वीकार करता है अथवा आधार्मिकता को प्रश्रय देता है। धर्मनिरपेक्षता के द्वारा यह ध्वनित होता है कि भारतीय राज्य किसी धर्म विशेष द्वारा शासित नहीं होगा उस प्रकार धार्मिक सहिष्णुता एवं तटस्थता का दूसरा नाम धर्म निरपेक्षता वाद भी होगा। 'The National Culture of India' की प्रस्तावना में डा0 आबिद हुसैन ने स्पष्ट किया है कि धर्म निरपेक्षतावाद का अर्थ अधार्मिकता या अनिश्वरवाद का भौतिक सुखों पर बहुत बल देना नहीं है यह आध्यात्मिक मूल्यों की सार्वभौमिकता पर बल देता है, जिन्हें विभिन्न उपायों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि धर्म निरपेक्षतावाद धर्म का प्रतिवाद या खण्डन नहीं करता नहीं धर्म की अवहेलना या उपेक्षा करता है। यह मूलता मानवतावादी अवधारणा है जो धर्म के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण अपनाता है। धर्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए धर्म निरपेक्षतावाद का उद्देश्य धार्मिक अन्धता, रूढ़िवाद अन्धविश्वास, कट्टरतावाद, सम्प्रदायवाद, तथा धार्मिक शोषण का उन्मूलन करना है।

18.4 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

धर्मनिरपेक्षता वाद की नींव पंद्रहवीं सदी में ही पड़ गयी थी जबकि । पुनर्जागरण काल में आस्था तथा विश्वास की अपेक्षा तर्कबुद्धि को प्राथमिकता दी जाने लगी। पुनर्जागरण काल से पूर्व सम्पूर्ण यूरोप पर धर्म का वर्चस्व था तथा जन-जीवन का नियमन, संचालन तथा निर्देशन ईसाई धर्म की मान्यताओं के अनुरूप होता था। इस युग में न केवल स्वतन्त्र चिन्तन तथा तर्क को समुचित स्थान न था बल्कि व्यक्ति की गरिमा, विचारों की स्वतन्त्रता समानता आदि आदर्शों एवं मूल्यों को समुचित स्थान नहीं प्राप्त था। सोलहवीं सदी आते आते इन विचारो के विरोध में सुधारवादी युग का प्रतिपादन होने लगा तथा कुछ विचारक विभिन्न अन्धविश्वासों, कट्टरवादिता आदि के खिलाफ आवाज उठाये

फलस्वरूप धीरे धीरे धार्मिक उदारता की विचारधारा पल्लवित तथा पुष्पित हुई इस प्रकार पुनर्जागरणकाल तथा सुधारवादी युग में धर्म निरपेक्षता के अभ्युदय के लिए ठोस आधारभूमि तैयार की।

सुधारवादी आन्दोलन के प्रमुख प्रणेता मार्टिन लूथर किंग ने उदारवादी चिन्तन तथा मानवतावादी दृष्टि को विकसित करने का प्रयास किया। धर्म सापेक्षतावाद के विरुद्ध चुनौती प्रस्तुत करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका आधुनिक युग के महान राजनीतिक दार्शनिक मैकियावेली ने राजसत्ता को धर्मसत्ता से पृथक करके निभाई। इसी क्रम में औद्योगिक क्रांति, मार्क्सवाद, मानवतावाद तथा डार्विन के विकासवाद ने भी धर्म के वर्चस्व को समाप्त करने वैज्ञानिक तथा मानवीय वृत्तियों के प्रचार के साथ धर्मनिरपेक्षता की दिशा में आगे कदम बढ़ाया। यूरोप के अलावा मानवतावाद तथा धर्म निरपेक्षतावाद का प्रभाव धीरे - धीरे ब्रिटेन पर भी पड़ा तथा अनेक विचारको में इस दिशा में आगे काम किये जैसे - जेम्स, जान स्टुअर्ट मिल, बेन्थम, जी. एच. लेविस आदि उपयोगितावादियों तथा सुधारवादियों ने धर्म निरपेक्षतावाद के प्रचार में महत्व पूर्ण योगदान दिया।

उपर्युक्त विचारों तथा विचारकों से प्रेरित होकर इंग्लैंड निवासी जार्ज जैकब हालियोक ने सन 1851 में इस विचारधारा को। धर्मनिरपेक्षतावाद" का नाम दिया। भौतिकवादी, प्रकृतिवादी, एवं इहलौकिकवादी नैतिक अवधारणा को अनिश्वरवाद से पृथक करने के लिए वे धर्म निरपेक्षतावाद का विकास करना चाहते थे। चार्ल्स ब्रैडलाफ ने धर्मनिरपेक्षता की विशेषताओं का और स्पष्टी- करण किया। हालि ओक धर्म के विरोध एवं खण्डन को महत्व देने के बजाय धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण के प्रतिपादन में रुचि रखते थे वही ब्रैडसाज धर्म के खण्डन को इसका प्रमुख आधार बनाया।

धर्म निरपेक्षतावाद की एक विशिष्टता यह बताई जाती है कि यह समस्त अलौकिक, अतीन्द्रिय, अति प्राकृतिक या पारलौकिक शक्तियों अथवा सत्ताओं का निषेध करते हुए केवल इहलौकिकता या सांसारिकता में विश्वास करता है। धर्मनिरपेक्षतावाद की आधारभूत मान्यता है - "इसी संसार तथा मनुष्य के वर्तमान जीवन के विषय में ही विचार करो। दैवी शक्तियों तथा परलोक के सम्बन्ध में नहीं।" इस सिद्धांत के समर्थकों की धारणा है कि विज्ञान की सहायता से तथा अनुभवा तथा तर्कबुद्धि के सहारे मानवता का कल्याण हमारा प्रमुख कर्तव्य है तथा प्राकृतिक नियमों तथा वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग के द्वारा ही मानव प्रगति, भौतिक सुख-सम्पति तथा तकनीकि प्रगति हासिल करनी चाहिए।

इस प्रकार कहा जाता है कि धर्मनिरपेक्षतावाद एक विशेष प्रकार की मानवतावादी जीवन दर्शन है जो धर्म तथा आध्यात्मवाद का निषेध करते हुए नैतिकता, शिक्षा, राजनीति, प्रशासन, कानून आदि को इन दोनों से पूर्णतः स्वतन्त्र मानता है और जो मनुष्य को अलौकिक या दैवी शक्तियों पर आश्रित रहने के स्थान पर पूर्णतः आत्म निर्भर बनने की प्रेरणा देकर उसके वैयक्तिकता एवं सामाजिक कल्याण के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म निरपेक्षता की अवधारणा में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पक्ष पाये जाते है किन्तु मूलतः यह नकारात्मक प्रवृत्ति की घोतक है। लौकिकता के सन्दर्भ में धर्म की असफलता का बोध इसका मुख्य प्रेरक है। धर्म के प्रति एक इस नकारात्मक दृष्टिकोण को धर्म निरपेक्षता का केन्द्र-बिन्दु माना जा सकता है।सकारात्मक पक्ष में धर्मनिरपेक्षता इहलौकिकता तथा वैधानिकता की पोषक है तथा धार्मिकता से मुक्त प्रकृतिवादी, प्रत्यक्षवादी एवं उपयोगितावादी अभिरुचियों का समर्थन करती है।

18.5 धर्मनिरपेक्षतावाद या इहलौकिकता वाद (Secularism or this Worldliness)

धर्मनिरपेक्षतावाद को कभी कभी इहलौकिकतावाद के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। इहलौकिकतावाद को धर्मनिरपेक्षकरण को प्रतिक्रिया (Process of Secularisation) का परिणाम माना जाता है। प्रो० फ्लिण्ट ने लिखा

है " दोनों सिद्धान्तों में निकटता का सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। प्रत्यक्षवाद तथा इहलौकिकतावाद में एक ही सिद्धांत एवं प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हुई है। दोनों सिद्धांतों के ही समष्टि के एक अंगों की तरह परस्पर सम्बन्धित कहे जा सकते है। इहलौकिक दृष्टि वस्तुतः विज्ञान की देन है क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने ही हमें धार्मिक चमत्कारों में विश्वास अन्धविश्वास तथा रुढ़िवाद से मुक्ति दिलाया है। इसमें बुद्धिवाद तथा आधुनिकतावाद का समर्थन किया गया है तथा उन्हीं मूल्यों के प्रतिपादन पर बल दिया गया है जो बुद्धि पर आधारित है। इस प्रकार इहलौकिकतावाद निम्न विधारों पर आधारित है

1. सांसारिकता को प्रश्रय देना (Be worldly)

2. मानव के सम्बन्ध में चिन्तन करना (Think about man)

3. वैज्ञानिक एवं बौध्दिक दृष्टिकोणों को प्राथमिकता देना।

18.6 भारतीय धर्म निरपेक्षतावाद .

भारत में धर्मनिरपेक्षता की परम्परा प्राचीन काल से प्रचलित है। वैदिक मान्यता' एक सद् विप्रा बहुदा वदन्ति से धर्म-निरपेक्षता की अवधारणा को समर्थन मिला है। बौद्ध एवं जैन परम्पराओं में भी यह धारणा स्वीकार की गयी है । धर्म सम्प्रदाय की अपेक्षा कर्तव्य का घोतक है। इस दृष्टि से धर्म निरपेक्षता का धर्म से विरोध नहीं व्यक्ति धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी अपने धर्म का पालन कर सकता है। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में धर्म का निषेध न होकर सभी धर्मों के प्रांत समभाव अपनाया जाता है। - यहात्मा गाँधी के अनुसार राष्ट्रीय एकता एवं सामंजस्य के लिए धर्म निरपेक्षता आवश्यक है। इसी के आधार पर धर्म तथा राजनीति की समस्या का समुचित हल संभव है। गांधी को धर्म निरपेक्षता की अवधारणा पाश्चात्य विचारधारा से भिन्न है। गाँधी राज्य तथा धर्म को अपृथक मानते है धर्मविहीन राज्य में दुराचार तथा भ्रष्टाचार पनपने लगते हैं। धर्म निरपेक्षता को सशक्त बनाने के लिए राज्य प्रशासन में धर्म का प्रभाव उपयोगी सिद्ध होता है। इससे न्याय सदाचार एवं शान्ति की स्थापना होती है।

गांधी के मत में धार्मिक सम्प्रदायों में परस्पर सद्भाव, मैली तथा सामंजस्य स्थापित करना ही धर्म निरपेक्षता हो- है। - यही गांधी के अनुसार धर्म निरपेक्षता का मूल लक्षण है। इसी दृष्टि से वे धर्म-निरपेक्षता के लिए सर्व धर्म समभाव शब्द का प्रयोग करते थे। व्यावहारिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए वे अपने सभी महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का प्रारम्भ धार्मिक प्रार्थना से करते थे। धर्म तथा राजनीति के मिश्रण द्वारा वे करोड़ों भारतीयों को जागरूक बनाने में सफल हुए। परम्परागत धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने सोई हुई जनता में चेतना की लहर फैलाई। शायद गांधी के इस महान योगदान को ध्यान में रखकर जवाहरलाल नेहरू ने कहा था- यद्यपि मुझे गाँधी के 'पाप तथा मुक्ति' को भावा पसन्द नहीं है किन्तु मुझे यह भी ज्ञान है कि जनता की महान शक्ति को कैसे जगाया जा सकता है। उसे गांधी अच्छी तरह जानते थे।

आधुनिक धर्म निरपेक्षतावादी सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक समस्याओं को धर्म से अलग करके देखते है किन्तु गांधी के अनुसार यह एकांगी दृष्टिकोण है। गांधीजी को विश्वास था कि धार्मिकता व सांसारिकता एक दूसरे से अलग नहीं है। आध्यात्मिकला हवं नैतिक मूल्यों से रहित आर्थिक समृद्धि का कोई महत्व नहीं। प्राचीन काल से सभी भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाएं धर्म तथा आध्यात्मिकता से जुड़ी रहती है। सभी भारतीय ऋषियो, मनीबियों ने धर्म तथा समाज को एक साथ रखा। गांधी, विनोवा भावे से लेकर आज अन्नाहजारे भारत में धर्म के सामाजिक महत्व पर बल देते हैं।

18.7 भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्षता

भारतीय संविधान व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों रूप में किसी भी धर्म को स्वीकार करने को स्वतन्त्रता देता है। भारतीय संविधान के 42 वें संशोधन (1976) में धर्मनिपेक्षता" प्रस्तावना में शब्द जोड़ा गया। संविधान की प्रस्तावना के अतिरिक्त संविधान के अन्य अनुच्छेद भी धर्मनिरपेक्षता की भावना का अभिव्यक्तिकरण करते हैं।

अनु० 15 तथा अनु०16 धार्मिक भेदभाव के उन्मूलन पर बल देता है। अनु०25 में प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने की स्वतन्त्रता दी गयी है। अनु०-27 में धार्मिक विषयों में व्यक्तिगत सहमति को महत्व दिया गया है। अनु० 23 में राज्य द्वारा संचालित विद्यालयों में अनिवार्य धार्मिक शिक्षा देने का निषेध है। उसके अतिरिक्त अनुच्छेद 325, 350 तथा 352 में धर्म के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों को बांटने का निषेध किया गया है।

उपर्युक्त विवेचनाओं के अतिरिक्त भी भारत के सन्दर्भ में यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है ? इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर सैद्धान्तिक रूप से महत्व हीन होगा क्योंकि जैसा कि उपर उल्लिखित है भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता का मूल्यांकन करते समय हमें यह भी देखना होगा कि हजारों वर्षों से हमारे देश को आध्यात्मिक तथा धार्मिक क्षेत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसमें प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार के धर्म तथा संस्कृतियों ने न केवल जन्म लिया बल्कि पल्लवित एवं पोषित होती रही साथ ही आज भी भारत उन्ही विभिन्नताओं के खाथ विद्यमान है।

इसके साथ ही धर्म के निषेधात्मक अर्थ का परित्याग करते हुए यदि हम धर्म को सकारात्मक तथा भावात्मक अर्थो में प्रयुक्त करें तो धर्म (हिन्दूधर्म) स्वयं धर्म निरपेक्षता की धारणा को सबलता प्रदान करता है। धर्म हमें पारस्परिक प्रेम, एकल भाव, समर्पण, त्याग, बन्धुत्य सहिता तथा सौहार्द की भावना उत्पन्न करने में प्रेरणा स्त्रोत बन सकता है) अतताः यदि भारतीय धर्मनिरपेक्षतावाद में व्याप्त कुछ विसंगतियों, विरोधाभासों तथा कमियों का निराकरण कर दिया जाय तो यह उदारवादी, समन्वयवादी, सहिष्णुतावादी मानवतावादी रूप में विश्व के अन्य धर्मनिरपेक्षता राज्य में अपना विशिष्ट स्थान रख सकता है।

18.8 सारांश

यह कहा जा सकता है कि धर्म- निरपेक्षता के पालन में यद्यपि कुछ कठिनाइयाँ व्याप्त है फिर भी यह मानव कल्याण तथा प्रगति का उत्तम साधन है। धार्मिक समुदायों में यह सह अस्तित्व के लिए सर्वोपयोगी है। अनुभव से यह सिद्ध होता है कि जिस राज्य में धर्म- निरपेक्षता का प्रचलन है कहाँ सामाजिक सन्तुलन तथा एकता का विकास होता है। हमारे कुछ पड़ोसी देशों में धर्मनिरपेक्षता की भावना के अभाव के फलस्वरूप आज जो सामाजिक हिंसा-कलह तथा अशान्ति दिखायी पड़ रही है। वह विश्व शान्ति के लिए संकेत बनती जा रही है। यदि धर्म-निरपेक्षता का प्रसार न किया जायेगा तो मानवता अंधकार युग न केवल कभी निकल पायेगी बल्कि अपनी उत्तरोत्तर वृद्धि में गिरती जायेगी। इसी के फल स्वरूप ही स्वतन्त्र बौद्धिक एवं वैज्ञानिक चिन्तक को बढ़ावा मिला है तथा रुढ़िवादी एवं संकीर्णतावादी प्रवृत्तियों का ह्रास हुआ है।

18.9 बोध - प्रश्न

1. धर्मनिरपेक्षतावाद से आप क्या समझते हैं?

2. क्या भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है ? विवेचना कीजिए।

18.10 उपयोगी पुस्तकें

1 समकालीन धर्म दर्शन - डॉ याकूब मसीह।

2 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं- डॉ वेद प्रकाश वर्मा।

3 धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ शिव भानु सिंह।

.......................000...................

इकाई–19 ईश्वर विहीन धर्म

19.0 उददेश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 जैन दर्शन के विचार

19.3 समीक्षा

19.4 निष्कर्षः-

----------00000-------

19.0 उददेश्य

प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि ईश्वर धर्म का केन्द्र बिन्दु है तथा धर्म मूलस्वरूप में मानव की ईश्वर के प्रति प्रतिक्रिया है। प्रो० क्रिण्ट की दृष्टि में ईश्वरवाद धर्म का पर्याय है। इसी प्रकार गैलवे के अनुसार धर्म मनुष्य से परे एक शक्ति में विश्वास है जहाँ वह अपनी रागात्मक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है, जिसे वह पूजा तथा सेवा के कार्यों में अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार जेम्स मार्टिन्यू के अनुसार धर्म एक चिस्तन ईश्वर में विश्वास तथा उसकी आराधना है। यह वह अतिमानस तथा दैवी संकल्प है जो अखिल ब्रह्माण्ड पर शासन करता है तथा मानवता को नैतिक सूत्रों में अनुबिद्ध करता है।

19. 1 प्रस्तावनाः-

उपरोक्त धर्म दार्शनिकों के मत से यह धारणा, पुष्ट होती है कि धर्म में ईश्वर का विशिष्ट स्थान है। विशेष उपासना स्थल पवित्र उग्रन्थ, प्रार्थना अथवा पूजा पाठ सम्बन्धी कर्मकाण्ड तथा धार्मिक अनुष्ठान धर्म के महत्वपूर्ण अंग है। धर्म में मानव ईश्वर का ज्ञान रखता है। ईश्वर के प्रति मनुष्य निर्भरता, श्रद्धा, प्रेम, आत्मसमर्पण आदि की भावनाओं का प्रकाशन करता है। धर्म में मनुष्य धर्माचरण के द्वारा ईश्वर के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। धर्म के ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक पहलू किसी न किसी एक में ईश्वर की अपेक्षा करते है। ईश्वर के अभाव में मनुष्य की धार्मिक भावनाएं क्रियाएं तथा क्रियात्मक पहलुओं की प्रामाणिकता ही नष्ट हो जाती है।

क्या ईश्वर रहित धर्म संभव है ? धर्म में ईश्वर की मान्यता की अनिवार्यता के प्रश्न पर विचारकों में काफी मतभेद पाया जाता है। क्या ईश्वर रहित धर्म संभव है? ईश्वर में विश्वास धर्म के लिए कितना आवश्यक है? धर्म में ईश्वर सम्बन्धी मान्यता क्यों अनिवार्य है? ऐसे प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमें ते बिन्दुओं पर विचार करना होगा।

-	एक तो धर्म के इतिहास पर दृष्टि डालनी होगी तथा दूसरे धर्म के स्वरुप का विवेचन करना होगा। सर्व प्रथम यह विचार करना होगा कि प्राचीन काल से अब तक विश्व में जो धर्म प्रचलित रहे है उनमें ईश्वर का स्थान क्या रहा है। क्या कुछ ऐसे धर्म पाये जाते हैं, जिनमें ईश्वर की मान्यता का अभाव है ? दूसरे बिन्दु में हमें धर्म के स्वरुप में निहित उन तत्वों का पता लगाना होगा जो धर्म को अनिवार्यता ईश्वर में विश्वास को ओर जाते है क्या धर्म का स्वरुप कुछ ऐसा है कि वह ईश्वर में विश्वास के बिना जीवित नही रह सकता ?

मानव इतिहास पर दृष्टिपात करने पर हमें धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध के बारे में तीन प्रकार के उदाहरण मिलते है। एक ओर पश्चिमी एशिया के पैगम्बरसादी धर्मी में प्रचलित ईश्वरवाद है तो उसके विपरीत सुदूर पूर्व के धर्मो में ईश्वर की मान्यता का सर्वथा अभाव पाया जाता है। इन दोनों के मध्य में भारतीय परम्परा में ईश्वर का स्थान है किन्तु ईश्वरवाद नहीं। प्रथम परम्परा में ईश्वर प्रधान है। इसमें यहूदी, ईसाई, तथा इस्लाम धर्म सम्मिलित है। दूसरा दृष्टिकोण चीन, जपान तथा कोरिया की परम्परा में विकसित हुआ है, जहाँ ईश्वर का कोई महत्व नहीं है। भारतीय धर्मो में ईश्वर शब्द का प्रचलन होते हुए भी ईश्वरवादी मान्यता का अपेक्षाकृत अभाव पाया जाता है।

वस्तुता धर्म में ईश्वर का महत्व की विवेचना इस बार पर निर्भर है कि हम ईश्वर शब्द का प्रयोग किस अर्थ में करते हैं। यदि हम ईश्वर की पैंगम्बरवादी अवधारणा स्वीकार करते है तथा ईश्वर को संहारकर्ता, सृष्टिकर्ता पालनकर्ता के रूप में मानते है, तो ऐसा ईश्वर धर्म के लिए अनिवार्य नहीं। विश्व में ऐसे कई धर्म है। जिनमें ऐसे ईश्वर की मान्यता नहीं पायी जाती। सुदूर पूर्व की कई संस्कृतियों में ईश्वर शब्द का ही प्रचलन नहीं है। वाओ, कन्फ्यूसियन, तथा शिन्टो धर्म में ईश्वर को अवधारणा का सर्वथा अभाव है।

'ईश्वर' शब्द की परम्परागत अवधारणा का मुख्य स्त्रोत पैगम्बरवादी धार्मिक परम्परा है। एक व्यक्तित्वपूर्ण सर्वगुण सम्पन्न, विश्व विधाता ईश्वर की मान्यता बाइबिल के धर्मो में स्वीकार की गयी है। सर्वप्रथम हजरत अब्राहम को ऐसे ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हुआ जो बाद में एकेश्वरवादी धर्मो में विकसित हुआ। ऐसे ईश्वर की अवधारणा भारतीय धर्मों मे पूर्णतया स्वीकार नहीं की गयी। बौद्ध-जैन जैसे धर्मों में कर्म की प्रधानता दी गयी है तथा वैदिक धर्मों में भी व्यक्तित्व सम्पन्न ईश्वर की अवधारणा स्पष्टता विकसित नहीं हुई। अधिकांश भारतीय धर्मो में ईश्वर, जगत तथा जीव की अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है, जो पैगम्बरवादी मान्यता से सर्वथा भिन्न है। वेदान्त में स्वीकृत सर्वेश्वरवाद ईश्वर को महत्वहीन बना देता है। अद्वैतपरक दृष्टिकोण में ईश्वर मायिक तथा मिथ्या प्रतीत होता है। वह केवल सापेक्ष सत्य है, निरपेक्ष नहीं। सांख्य एवं मीमांसा जैसे सम्प्रदायों में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। योग में भी ईश्वर को मात्र साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। अन्य साधनों के समान ईश्वर की मान्यता भी योग सिद्धि में सहायक होती है।

इस प्रकार इतिहास के निरीक्षण करने पर हम पाते हैं कि विश्व में ऐसे कई धर्म है, जिनमें ईश्वर की मान्यता स्वीकार नहीं की गयी है। पैगम्बरवादी धर्मो को छोड़कर विश्व के अधिकांश धर्मया तो ईश्वर को नगण्य मानते है, अथवा अपेक्षाकृत कम महत्व देते हैं। वस्तुता एकमात्र ईश्वरवादी परम्परा का आधुनिक विकास भी परम्परागत ईश्वर के निषेध के रूप में हुआ है। आगस्त काम्टे के मतानुसार आधुनिक (ईसाई) मानव जगत तथा ईश्वर, विश्व विश्वातीत पृथ्वी स्वर्ग के , द्वन्द को पूर्णतया त्याग चुका है। आज वैज्ञानिक शोध के परिणामस्वरूप ईश्वर सम्बन्धी पुरानी मान्यताएं व्यर्थ तथा अनुपयोगी सिद्ध हो चुकी है-

जब उस जगत' तथा अलौकिक का विचार निरर्थक है, ब्रह्माण्ड की घटनाओं, ग्र हों तथा नक्षत्रों के बारे में भविष्यवाणी तथा उन-पर नियन्त्रण विज्ञान में संभव कर दिया है।

बाइबिल की ईश्वर वादी परम्परा में ईश्वर का निषेध कहीं-कहीं उग्ररूप धारण कर चुका है। एडाल्फ बुल्टमान ने स्पष्ट किया कि ईश्वर जैसे निरंकुश शासक की पैराणिक गाथा को त्याग कर एक ऐसी नयी पौराणिकता का विकास करना होगा जो शासक की मान्यता से रहित हो। विश्वातीत तथा वहाँ की अपेक्षा यहाँ विश्व के सन्दर्भ में उसकी व्याख्या होनी चाहिए। यदि उस पार' का ज्ञान 'इसपार' के द्वारा नहीं हो सकता, यदि विश्वातीत' की कल्पना ही निराधार है। दैवी प्रकाशना अथवा श्रुति के द्वारा भी यह ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता। यास्पर्स के अनुसार उसपार अथवा विश्वातीत सम्बन्धी मिथक वस्तुता एक निराधार एवं अनधिकृत चेष्टा है। दित्य चक्षु तीसरा नेत्र (x-ray vision) तथा अन्तः प्रज्ञा जैसी अतीन्द्रिय द्दष्टि होने का दावा भी विवादास्पद है। वास्तव में ईश्वर का ज्ञान असंभव है न तो इसका कोई लौकिक अर्थ है न सन्दर्भ, न अनुभव व संकेत होता है।

अगर भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में बात की जाय तो भारतीय दर्शन में अनेक धर्म ऐसे प्राप्त होते है, जिनमें ईश्वर का अभाव है। इन धर्मों में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है, अपितु ईश्वर का खण्डन किया गया है। इसलिए ऐसा सोचना अनुचित एवं असंगत है कि ईश्वर के बिना धर्म संभव नहीं है। ईश्वर विहीन धर्मो में मुख्यता बौद्ध-धर्म, जैन धर्म, मानवतावादी धर्म आदि सम्मिलित है। इन्हे 'अनीईश्वरवादी धर्म' भी कहा जाता है। बौद्ध धर्मी विश्व के प्रचलित धर्मो में महत्वपूर्ण स्थान रखता है परन्तु यह ईश्वर की सत्ता का निषेध करता है। भगवान बुद्ध ने अनित्यवाद या क्षणभंगवाद का प्रणयन करते हुए अपरिवर्तनशील, नित्य तथा शाश्वता ईश्वर को अनित्य एवं परिवर्तनशील विश्व का रचयिता मानने से इन्कार किया है। यदि नित्य ईश्वर विश्व का सृष्टा या निर्माता है तो विश्व में परिवर्तन एवं विनाश का अभाव होना चाहिए। ऐसी अवश्या में विश्व में भी नित्य शाश्वत, अपरिवर्तनशील तथा अपरिणामी होना चाहिए व्यवहार में हम देखते है कि विश्व आप परिवर्तनशील है विश्व की ओर देखने से हमे विश्व को शुभ अशुभ, सुख-दुख के अधीन पाते है। ईश्वर को पूर्ण तथा शुभ भी नहीं माना जा सकता क्योंकि शुभ ईश्वर को विश्व में व्याप्त अशुभ का रचयिता नहीं माना जा सकता है।

19.2 जैन दर्शन के विचार:-

बौध्द दर्शन की तरह जैन दर्शन भी ईश्वर विहीन धर्म माना जाता है। साधारणतया ईश्वर को जगत का सृष्टा माना जाता है। यदि ईश्वर जगत का सृष्टा है तो प्रश्न उठता है कि किस प्रयोजन से विश्व का निर्माण करता है। सामान्य तथा चेतन प्राणी जो भी कर्म करता है, वह स्वार्थ से प्रेरित होकर करता है या दूसरों पर करूणा प्रदर्शित करने के लिए करता है। अतः चेतन ईश्वर को भी स्वार्थ तथा करूणा से प्रेरित होना चाहिए। ईश्वर स्वार्थ से प्रेरित होकर सृष्टि नहीं कर सकता क्योंकि वह पूर्ण है। उसका स्वार्थ नहीं है। इसके विपरीत यह भी नहीं माना जा सकता क्योंकि करूणा से प्रभावित होकर ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण किया, है क्योकि सृष्टि के पूर्व करुणा का भाव उदय हो ही नहीं सकता। करुणा का अर्थ है दूसरों के दुख दूर करने की इच्छा । परन्तु सृष्टि के पूर्व दुःख की विद्यमानता को मानना अनुपयुक्त तथा असंगत है। इस प्रकार जैन धर्म विभिन्न युक्तियों से ईश्वर उत्तर की सत्ता का खण्डन करता है।

जैन धर्म में ईश्वर के अस्तित्व के समर्थन में नैयायिकों द्वारा प्रदत्त युक्तियों का खण्डन भी प्राप्त होता है। प्रत्येक कार्य के लिए कर्ता की अपेक्षा की जाती है। उदाहरणार्थ गृह एक कार्य है, जिसे कर्ता ने बनाया है उसी प्रकार विश्व एक कार्य है, जिसके स्रष्टा का होना आवश्यक है वह ईश्वर है। - ऐसा नैयायिकों का मत है। जैन धर्म इस युक्ति को दोवपूर्ण मानता है। क्योंकि इसमें पहले से ही यह मान लिया कि संसार एक कार्य है। नैयायिक जैन धर्म के इस आक्षेप का यथोचित उत्तर न दे पाये। यद्यपि सैद्धान्तिक रुप से जैन धर्म में ईश्वर का खण्डन हुआ है फिर भी व्यावहारिक रुप में जैन धर्म में ईश्वर का विचार किसी न किसी रूप में प्राप्त होता है। जैन धर्म में ईश्वर के स्थान पर तीर्थकरों को माना गया है जो मुक्त है। इसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन। अनन्त वीर्य तथा अनन्त आनन्द निहित है। जैन योग महात्माओ तथा अपने तीर्थकरों की मूर्तियां बनाकर भी पूजा करते हैं। पूजा, प्रार्थना, धर्म, श्रद्धा तथा भक्ति में जैनियों की पर्याप्त विश्वास है। इस प्रकार में

ईश्वर की सत्ता नकारते हुए भी तीर्थकरों को ईश्वर के रुप में स्वीकार करते है क्योंकि उनका मानना है कि तीर्थकरों द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

मानवतावादी धर्म के विचार- अनीश्वरवादी धर्मों के अन्तर्गतमाननीय धर्म या मानवतावादी धर्म को भी सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार की धार्मिक विचार धारा- का समर्थन करने वाले पश्चिमी विचारकों में काम्टे तथा भारतीय विचारक रविन्द्रनाथ ठाकुर तथा विवेकानन्द प्रमुख है। टैगोर की मान्यता है कि मानव ससीम तथा असीम की समष्टि है। शारीरिक दृष्टि से मानव ससीम है परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से असीम है। इस प्रकार के धर्म में मानवता की पूजा की जाती है। काम्ते के अनुसार धर्म का केन्द्र विंदु मानव है तथा धर्म का इतिहास मानव के विकास का इतिहास है। मानव का अस्तित्व असन्दिग्ध है। इस प्रकार मानव को आराधना का विषय मानने से धर्म के पहलुओं की पुष्टि हो जाती है। मानव के साथ मानव धार्मिक सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई की अनुभूति नहीं करता है। काम्ते ने कहा है कि यह ऐसा धर्म है जो कला के सौन्दर्य से ओत-प्रोत है तथा विज्ञान के साथ असंगत नहीं है। मानव धर्म में मानव को ही पूजा होती है न कि किसी पारलौकिक सत्ता की प्रो0 हिंगल पैतीसन ने' 'Idea of God' मे कहा है कि मानव की पूजा को स्वीकार कर लेने से ईश्वर की सत्ता का खण्डन हो जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त उद्धृत तीनों धर्म-

बौद्ध धर्मी जैन धर्म तथा मानव धर्म ईश्वर विहीन धर्म है क्योंकि इन तीनों में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन तीनों धर्मो को किन आधारों पर धर्म के रुप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए हम कह सकते है कि उन्हें धर्म की संज्ञा इसलिए दी जाती है क्योंकि इन धर्मों का मूल्यों से अनियोज्य सम्बन्ध है। हाफडिंग महोदय ने धर्म को पारिभाषित करते हुए कहा है कि धर्म मूल्यों की संरक्षा में विश्वास है अर्थात् धर्म समस्त मानवीय तथा सामाजिक मूल्यों की रक्षा करता है तथा उनको पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करता है।

19.3 समीक्षा

1. इस प्रकार ईश्वर विहीन धर्म स्वयं ईश्वर से पृथक करने का दावा करते है किन्तु विचारणीय है कि बिना ईश्वर के धर्म सम्भव है? यहाँ गहनता से धर्मों का मूल्यांकन करने से दृष्टत्य होता है कि प्रत्येक ईश्वर विहिन धर्म में किसी न किसी प्रकार से ईश्वर या इसके सादृश्य सर्वशक्तिमान सत्ता की कल्पना की गयी है, जिसका कारण मनुष्य की आपूर्णता तथा सीमितता है जब मनुष्य सांसारिक संघर्षो, आपदाओं अथवा दुखों से घबरा जाता है तब वह ईश्वर या ईश्वर तुल्य सत्ता की अपेक्षा करता है।

2. धर्म के ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं संवेज्ञात्मक पक्ष की संतुष्टि हेतु ईश्वर जैसी सत्ता अनिवार्य है धार्मिक आस्था के स्वरूप की विशिष्टता बताती है कि इसकी उत्पत्ति सामान्य सांसारिक वस्तुओं में नहीं हो सकती है यह आस्था अलौकिक आदर्शों व तत्वों में ही उत्पन्न होती है। धर्म में भावनात्मक निर्भरता, अलौकिकता द्वारा ही सम्भव है जिससे उपासक, भावनात्मक रूप से उपास्य से सम्बन्ध बनाता है। पुनः मनुष्य की संवेगात्मक सन्तुष्टि केवल व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर द्वारा सम्भव होती है जिसका प्रमाण यह है कि विश्व के अधिकतर लोक- प्रिय धर्म का केन्द्रीय तत्व ईश्वर है।

3. यदि हम निरीश्वरवादी धर्मों पर विचार करें तो बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने बुद्ध को ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया जबकि हीनयान धर्म अनीश्वरवादी होने के कारण लोकप्रिय नहीं हो सका। जैन धर्म में आचार्य, मुनि, अर्हत, उपाध्याय एवं साधु पंच परमेष्ठी है जोकि ईश्वर के समान महत्व रखते है। मानववाद का धर्म के रूप में प्रचलित न होना यह सिद्ध करता है कि धर्म में ईश्वर का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

19.4 निष्कर्षः-

वस्तुता धर्म को कुछ मूल्यों तक सीमित करते व्यवस्थित नहीं कर सकते यद्यपि धर्म का आदर्श केवल काल्पनिक या सम्भाव्यशक्ति नहीं बल्कि वास्तविक या अनिवार्य मूल्य अपना आदर्श है फिर भी गैल्वे के इस मत से असहमत होना कठिन है कि धर्म मानव द्वारा किसी न किसी परम शक्ति में विश्वास है जिसके द्वारा वह अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि तथा जीवन में स्थिरता प्राप्ति की चेष्टा करता है। इस तरह ईश्वर विहिन धर्म में भी मनुष्य के आन्तरिक जीवन को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक परम शक्ति की मान्यता को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया गया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते है कि जहाँ तक धर्म के स्वरूप का सम्बन्ध है, सैध्दांतिक रूप से विश्व में अनेक ईश्वर विहीन धर्म अस्तित्व में रहें है किन्तु जहाँ तक धर्म के व्यावहारिक पक्ष का प्रश्न है अधिकतर धर्मों ने किसी न किसी रूप में पारलौकिक था आध्यात्मिक ईश्वर सादृश्य सत्ता के प्रमाण प्राप्त होते हैं

-----------00000-----------